



# हिन्दी सूफी काव्य में चिश्ती विचार धारा

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ की एम० फिल्  
(हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत लघुशोध प्रबन्ध

प्रस्तुत कर्ता

**वलीमुहम्मद**

एम० ए० (हिन्दी), बी० एड०

निर्देशक

**डा० नज़ीर मुहम्मद**

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी)

पी० एचडी०, डी० लिट्० (ज्ञानाचार्य)

प्रोफेसर

हिन्दी विभाग, अ० मु० वि० वि०

अलीगढ़

हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय  
अलीगढ़  
1991

**Fed In Computer**

DS 1886



**DS1886**

# विषय सूची

नाम अध्याय

पृष्ठ

1- प्रस्तावना

1-4

2- सूफीमत

5- 24

।अ। सूफीमत का आविर्भाव

।ब। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

।स। सूफी शब्द का अर्थ- अर्थात् सूफी कौन है ?

।द। सूफीमत अथवा तसव्वुफ़

3- सूफीमत की पृष्ठभूमि

25- 35

।अ। सूफी सम्प्रदाय की धार्मिक पृष्ठभूमि

।ब। सूफी सम्प्रदाय की उत्पत्ति का कारण-सूफी सम्प्रदाय

। की राजनैतिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि

।स। सूफियों के विभिन्न सम्प्रदाय

4- सूफी-विचार धारा का उद्भव तथा विकास-प्रमुख सूफी

36- 69

सन्तों का संक्षिप्त विवरण

।अ। बुराहान और दासौकिशाना के सूफी

।ब। ईरान तथा उसके आसपास के सूफी

।स। आग और गिअ के सूफी

।द। बग़दाद के सूफी

।य। सूफी-मत के विभिन्न सम्प्रदाय - ज़ादिरिया, सुहरवीरिया,

नज़्जबिन्दिया तथा चिश्तिया सम्प्रदाय

।र। भारत वर्ष में चिश्तिया सम्प्रदाय।सिलीसिली। का प्रारम्भ

5- भारत धर्म में विद्यती सम्प्रदाय और उसके प्रमुख सूफी सन्त

76-110

।अ। छ्वाजा गुलामुद्दीन विद्यती का जीवन परिचय

।ब। भारत धर्म में विद्यित्या सम्प्रदाय की आध्यात्मिक  
जीवन परम्परा

।1। छ्वाजा बख्तियार काजी

।2। बाबा फरीदुद्दीन गीन बख्श

।3। सूफी हमीदुद्दीन नानौरी

।4। सुल्तानुल गझावतु हजरत निझामुद्दीन औलिया-  
महबूब-ए-इलाही

।5। हजरत अलाउद्दीन अली अहमद ताजिब कीर्तियरी

6- हिन्दी-सूफी-काव्य में विद्यती विचार धारा

111-163

।अ। सूफी-प्रेम का स्रोत

।ब। सूफी-काव्य का उद्भव तथा विकास

।स। हिन्दी सूफी-काव्य का उद्भव तथा विकास

।द। सूफी काव्य की तथा प्रवृत्ति

।य। प्रेमाश्रयी परम्परा के प्रमुख सूफी कवि

।र। जायसी की कृतियों में सूफी विचार धारा

7- उपसंहार

164-173

8- परिशिष्ट

174-182

।अ। सहायक ग्रन्थ-हिन्दी

।ब। सहायक ग्रन्थ-उर्दू-फारसी

।स। सहायक ग्रन्थ-अंग्रेजी



।- प्रस्तावना

## प्रस्तावना

भारत वर्ग एक विस्तृत विप्लव देश है । यहाँ अनेक जाति सम्प्रदाय एवं धर्म के व्यक्ति निवास करते हैं । जिनकी अनेक भाषाओं के साथ-साथ अनेक प्रकार की विचार धाराएँ भी हैं । देश का दुर्भाग्य यह है कि यहाँ जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के नाम पर घेर-विरोध की भावना समा-समय पर भीतर ज्वालागुली के रूप में भड़क उठती है । देश की भावनात्मक एकता को मजबूत बनाने के लिये संतों, सूफ़ियों तथा समाज सुधारकों द्वारा सदैव ही प्रयास किये जाते रहे हैं । इस दृष्टि से हिन्दी-सूफ़ी कवियों का कार्य अत्यंत सराहनीय एवं महत्वपूर्ण है । हिन्दी सूफ़ी कवियों में अधिकांश वे हैं जो विप्लवी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं । भारतवर्ष में विप्लवी सम्प्रदाय ने परस्पर भाई चारा एवं जल्लि तथा धर्म से हटकर समन्वय का मार्ग अपनाया था । इन्होंने अपनी पाणी, मन तथा कार्य से जनसाधारण में स्नेह स्थापित करने का भरसक प्रयास किया है । सुप्रसिद्ध कवि सूफ़ी गुलाम दाऊद, मुहम्मद, खंडन, नूर मुहम्मद और मलिक मुहम्मद जायसी आदि हिन्दी के सभी श्रेष्ठ, सूफ़ी कवि विप्लवी विचार धारा से प्रभावित रहे हैं ।

विप्लवी विचारधारा में जाति, धर्म, ऊँच, नीच, सूत अशूत आदि भेद भावों को किसी प्रकार की स्वीकार नहीं किया जाता है । उसका प्रमाण यह है कि इस सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा हज़रत मुहंनुद्दीन विप्लवी के अण्डेर स्थित मजार पर हिन्दू-मुस्लिम सिख-ईसाई सभी अत्यंत श्रद्धा-भाव से पधारत करने जाते हैं । भारत में ही नहीं, वरन् विदेशों से भी अनेक तीर्थ यात्री विदन-प्रीतिदिन हज़रत ख्वाजा मुहंनुद्दीन के मजार पर आता-सुन्न अर्पित करने आते हैं तथा विन्नतों मीन कर अपनी मनोकामना पूरी करते हैं ।

भारत देश में राष्ट्रीय भावात्मक एकता तथा सहभाषना को मजबूत बनाने के लिये छद्माज्ञा मुहम्मददीन चिश्ती तथा उनके शिष्यों द्वारा रचित हिन्दी-सूफ़ी साहित्य में अभिव्यक्त हुई चिश्ती विचारधारा का प्रचार एवं प्रसार अत्यंत सहायक सिद्ध हो सकता है । प्रस्तुत शोध प्रबंध "हिन्दी सूफ़ी साहित्य में चिश्ती विचार धारा" इसी विचार एवं उद्देश्य से परिपूर्ण है ।

शोध प्रबंध छः अध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय के अंतर्गत "सूफ़ी" शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ तथा प्रयोग बताते हुये सूफ़ी विचारधारा अध्यात्मतत्त्वबुद्धि पर भी प्रकाश डाला गया है । द्वितीय अध्याय सूफ़ी विचार धारा की पृष्ठभूमि से संबंधित है । इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ उद्घाटित करते हुये सूफ़ी विचार धारा पर पड़े अनेक प्रभावों को दिखाया गया है ।

प्रबंध का तृतीय अध्याय सूफ़ी विचार धारा का उद्भव तथा विस्तार सम्बंधी है । इसमें विषय के प्रमुख सूफ़ी संतों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है । सूफ़ी जगत के विभिन्न सम्प्रदाय तथा भारतवर्ष में विस्तृत स्थिति के प्रारम्भ पर भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है ।

शोध प्रबंध का चतुर्थ अध्याय भारतवर्ष में चिश्ती सम्प्रदाय तथा उसके प्रमुख सूफ़ी संत नागक है । छद्माज्ञा मुहम्मददीन चिश्ती, बाबा बड़तार शरीफ, बाबा फ़रीदुद्दीन गंज शज़र, अली अहमद सादिक तथा छद्माज्ञा निज़ामुद्दीन औलिया आदि की विस्तृत चर्चा इस अध्याय में की गयी है ।

पंचम अध्याय का शीर्षक "हिन्दी-सूफ़ी-काव्य में चिश्ती विचार धारा" है । हिन्दी के सभी सुप्रसिद्ध सूफ़ी कवियों तथा उनकी रचनाओं पर आधारित चिश्ती विचार धारा को उद्घाटित करने के प्रयत्न इस अध्याय में किये गये हैं ।

छठा अध्याय उपसंहार का है । प्रस्तुत शोध में प्राप्त सभी तथ्यों का समीक्षित एवं सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है । प्रबन्ध के अंत में परिशिष्ट है । इसमें हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेज़ी इत्यादि के सहायक ग्रंथों की सूची दी गयी है । शोध प्रबन्ध में सहायक प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं तथा कोश ग्रन्थों तथा उनके प्रकाशन का भी उल्लेख किया गया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में परम आदरणीय प्रोफ़ेसर नज़ीर मुहम्मद साहब ने मेरी बहुत सहायता की है । उनकी अनुकम्पा के बिना कार्य का पूरा होना असंभव सा था । मैं उनके तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति आभारी हूँ ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग-अध्यक्ष डॉ० मुहम्मद शरीफ़ खाँ साहब से इस शोध में जो प्रेरणा तथा समधानुभूत निर्देशन प्राप्त होता रहा है, उससे मेरे लिये उनका कृपा पात्र होना ही सिद्ध करता है ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अनेक आचार्यों की सहानुभूति सदैव मेरे प्रति रही है । विशेष रूप से डॉ० रवीन्द्र धर, डॉ० शाण्डिल्य आदि का मैं अति आभारी हूँ जो समय-समय पर चौका-चर मुझे, मेरे कार्य की ओर उन्मुख कराते रहे हैं । प्रस्तुत शोध की स्वीकृति दिलाने में डॉ० के० पी० सिंह साहब ने जो कृपा की है, उसे मैं कैसे भुला सकता हूँ । इसके साथ ही जब भी आदरणीय प्रो० नज़ीर साहब से किसी प्रकार का परामर्श किया है तो तत्काल ही डॉ० आरिफ़ नज़ीर की जिज्ञासा यही रही है कि मैं शीघ्र अति शीघ्र अपने शोध को पूर्णता प्रदान करूँ । ऐसा करना उनके लिये स्वाभाविक भी था क्योंकि मैंने उन्हें सदैव अपना अनुज समान ही माना है ।

अन्त में मैं उन सभी परिचित और अपरिचित विद्वज्जनों के प्रति  
आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने मेरे कार्य में सहानुभूति एवं  
स्नेह पूर्वक बहुमूल्य योगदान दिया है ।

9/61, राजों वाली गली,  
मुहम्मद अली रोड,  
अमर कोट, अलीगढ़ - 202001  
दिनांक 14-2-91

विद्वज्जन कृपाजीक्षी  
वलीमुहम्मद  
[पत्नी मुहम्मद]

## 2- सुफीमत

॥अ॥ सुफी मत का आविर्भाव

॥ब॥ सुफी शब्द की व्युत्पत्ति

॥स॥ सुफी शब्द का अर्थ - अर्थात् सुफी कौन है ?

॥द॥ सुफीमत अथवा तसवुफ

### सुफी मत =====

सुफी मत की पूर्ण स्थायी परिभाषा सम्भव नहीं है । कारण यह है कि प्रत्येक सुफी ने अपने व्यक्तिगत अनुभव एवं प्रयत्न से जो भी परिणाम एवं मानवोपित लाभ प्राप्त किये हैं, उन्हीं को लेखनी बना कर दिया है । अतः यही उपित प्रतीत होता है कि सीधेपत रूप में उसका सार लिखने का प्रयत्न किया जाये ।

सुफीमत कार्य रूप में जीवन की वह प्रणाली एवं उसका वह लक्ष्य है जिससे सीधे-सीधे ईश्वर से सम्पर्क स्थापित हो सके । इस सम्पर्क को स्थापित करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ मनोवैज्ञानिक अनुभवों से गुजरना पड़ता है । यह अनुभव ही विभिन्न सुफियों की सम्पत्ति है जिसके आधार पर उन्हें जीवन की वास्तविकता एवं परम शक्ति के अस्तित्व का अटल विश्वास पैदा होता है । परम शक्ति का यह ज्ञान उन्हें केवल अपने हृदय की गहराईयों में जाकर ही प्राप्त होता है । इसीलिए इसे दैवी ज्ञान की संज्ञा दी जाती है क्योंकि यह हृदय - चक्षुओं के द्वारा ही अवलोकित किया जाता है ।

जब इन अनुभवों को वाणी द्वारा व्यक्त किया जाता है तो अनेक उलझनें आ खड़ी होती हैं, जो विपरीत तथ्यों पर आधारित होती हैं । ऐसी स्थिति में अनेक प्रश्न उभर कर सामने आते हैं :- ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध ? एक का अनेक से किस प्रकार सम्पर्क स्थापित हो ता है ? यह नश्वर मानव किस प्रकार अनन्त सत्ता का अवलोकन कर सकता है ? और इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रश्न हैं जो एक गनीती एवं दार्शनिक के लिए कितनाई ही उपास्थित कर देते हैं । एक रहस्यवादी अध्या दार्शनिक जब इन अनुभवों को वाणी का रूप देना चाहता है तो छिब और भी धूमिल हो जाती है । ठीक ही कहा है -

फूल सुफी को फूलसफे में है छुटा मिलता नहीं ।

डोर को सुलझा रहा है, पर सिरा मिलता नहीं ॥

॥अकबर इलाहाबादी॥

कोई भी दार्शनिक जब इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न करता है तो और अधिक उलझ जाता है । अतः यही कारण है कि जब भी इस अटल वास्तविकता को वाणी का परिधान पहनाया जाता है तो इसका कोई न कोई अंग अवश्य ही अनावरित रह जाता है । अर्थात् वाणी द्वारा इसका परिचय कराने में पूर्ण सफलता नहीं मिलती ।

सात समुद्र की मीसि कहीं कलम करी बनराई ।

बसुंधा सब कागद करी, हीर जस लिखी न जाइ ॥

॥ कबीर ॥

परिणामतः इसकी सत्यता में असत्यता का कुछ न कुछ अंश अवश्य सम्मिलित हो जाता है । और वैमनस्य एवं विरोध भी उठ खड़ा होता है । इन्हीं कीटनाइयों एवं तकाबटों को दूर करने के लिये रहस्यवादियों ने कुछ ऐसे विशेषण अपनाये, जो परम सत्ता के लिए अभी तक प्रयुक्त नहीं हुए थे । अतः किसी ने इस "सत्य" को नेस्ती ॥ पारसी में ॥ और किसी ने नैति - नैति ॥ उपनिषदों में ॥ । कहकर पुकारा, परन्तु उसके सम्बंध में इससे अधिक न कह सके - इन्हे अरबी और अब्दुल करीम जीली ने इसे अलअमा एवं अदम के नामों से विभूषित किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के सभी रहस्यवादियों में, विषा-रात्मक शक्ति होते हुये भी कुछ लक्षण ऐसे हैं जिनसे प्रत्येक ॥ हिन्दू मुस्लिम, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि ॥ की विचार धारा अपना निजी रूप रखने के कारण सरलता से पहचान ली जाती है ।

जहाँ जहाँ भी सूफी मत को गहराई एवं विस्तार के साथ ग्रहण किया गया है, वहाँ पर सभी में समान दृष्टि कोण पाया जाता है ।

। - नैति नैति जैहि वैदीनरूपा ॥ तुलसी ॥



यह समान दृष्टि कोण, परमात्मता एवं सृष्टि के सम्बन्ध में अद्वैत वादी दृष्टि कोण है । इस दृष्टि कोण पर देश एवं काल का कोई प्रभाव दृष्टि गोचर नहीं होता । इसकी अपेक्षा अद्वैतवाद से हटकर सूफी मत पर देश एवं काल का जो प्रभाव दिखाई देता है, वह केवल क्षेत्रीय परम्पराओं एवं धार्मिक विश्वासों के कारण है ।

### सूफी मत का आविर्भाव : -

अब प्रश्न यह उठता है कि जिन परिस्थितियों के प्रभाव में आकर अद्वैत वादी विचार धारा में सूफीमत आविर्भूत होता है ? आम धारणा यह है कि प्रत्येक धर्म या तो सूफीमत ही है अथवा सूफीमत पर आधारित है । यदि सूफी मत से हमारा अभिप्राय बिना किसी माध्यम के ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करना है, तो निश्चय ही प्रत्येक धर्म सूफी मत पर आधारित है । जिस धर्म में परमात्मा और आत्मा के एकत्व स्थापित करने की भावना नहीं, वह धर्म नहीं धर्मोत्सला मान है । फिर भी हम धर्म एवं सूफीमत में स्पष्ट अन्तर पाते हैं । वास्तव में सच्चा धर्म सभी मानवों को प्रभुत्व प्रदान करने की सान्त्वना के लिए सामग्री उपलब्ध कराता है । इसमें ज्ञान एवं बुद्धि को जहाँ तिरस्कृत नहीं किया जाता, वहीं कर्म एवं भावुकता की सामग्री भी मौजूद रहती है । <sup>१</sup>इसने का तात्पर्य यह है कि रहस्यवादी जितना उस परम सत्ता के बारे में जानना चाहता है, उतना ही गहरा ज्ञान उस परम सत्ता के बारे में वह रखता भी है । दूसरी सूफी मत की यह विशेषता है कि वह मनुष्य के आन्धान्तरिक जीवन पर अपना ध्यान केन्द्रित रखता है और उसी को उजागर करने लिए निरन्तर प्रयास रत रहता है । यद्यपि बहुत से बड़े-बड़े रहस्यवादियों में बुद्धि-विवेक एवं पारम्परिक शिक्षा-कर्म के संकेत भी

मिलते हैं जो या तो धर्म के प्रभाव के कारण हैं अथवा मानव-जीवन की कुछ महती आवश्यकताओं का परिणाम, जबकि सूफी मत केवल आवेश एवं आन्तरिकता का ही नाम है । अर्थात् सूफी आवेश के साथ अपने ही हृदय की गहराइयों में झोंका करता है । इससे स्पष्ट होता है कि कोई भी धर्म मूल रूप में सूफीमत से प्रभावित नहीं है । सूफी अपने परम प्रियतम के प्रेम में इतना रंग जाता है कि उसके सिवा उसे किसी की परवाह ही नहीं रहती, और न वह किसी के प्रति कोई विचार प्रेष रखता है :-

कभी ख्याल की हद में था यार का जलवा ।

बस अब तो जलवा ही जलवा है ख्याले यार नहीं ॥

स्थानिक सूफी मत का आविर्भाव धर्म के अस्तित्व में आने के पश्चात् हुआ है । यही कारण है कि सूफी मत धार्मिक व्यक्ति के जीवन के किसी एक स्तर की व्यक्तिगत अनुभूति के साथ आवेश में लाने का प्रयास करता है ।

इसके साथ यह प्रश्न भी उठता है कि सूफी मत धार्मिक-जीवन में किस पड़ाव पर प्रकट होता है ? उपर्युक्त तथ्य के आधार पर इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि जब तक मनुष्य उस परम सत्ता के साथ बिना किसी माध्यम के सम्पर्क स्थापित करने में किसी बाधा का आभास नहीं करता, उस समय तक उसका मन सूफीमत की ओर आकर्षित नहीं होता । उसके धार्मिक जीवन में एक समय ऐसा भी था, जब वह उस परम सत्ता की विभिन्न शक्तियों के रूप में देखता था, फिर भी वह स्वयं एवं परम सत्ता के मध्य किसी दूरी अथवा अलगाव की कल्पना नहीं

करता था । उसकी दृष्टि में यह विभिन्नता ही अभिन्नता के रूप में उभरती थी । इस अनेकत्व में एकत्व की धारणा निहित थी । परिणाम-स्वरूप उसने विभिन्न शक्तियों से सम्पन्न विभिन्न देवताओं को मनुष्य के रूप में द्राल लिया था । ऐसी परिस्थिति में अलगाव की सम्भावना नहीं थी ।

तत्पश्चात् मनुष्य के धार्मिक जीवन में वह समय भी आया जब वह ईश्वर को एक अलग सत्ता स्वीकार करने लगा । वास्तव में यही सही विचार था । कहानी एवं दंत कथाओं के आधार पर मनुष्य के मस्तिष्क में उस परम सत्ता के बने स्वरूप को सम्राप्त करने के लिए यह विचार पर्याप्त था । इस विचार के अन्तर्गत अद्वैत के स्थान पर द्वैत की धारणा से परिचित कराना था । इसका अभिप्राय यह था कि ईश्वर और मनुष्य दोनों अलग - अलग हैं । ईश्वर वह परम सत्ता है जो अनन्त, अगम्य, अखंड, अछेद, अम्ल एवं असीम है, जबकि मनुष्य निर्बल, सीमित, नश्वर, एवं अस्थायी है । यह अन्तर ही सुफियों की अद्वैत वादी विचार धारा में बाधा उत्पन्न करता है । यह तो सर्व विदित ही है कि ईश्वर अनन्त होते हुए समस्त सृष्टि का रक्षयिता, सर्व ज्ञाता एवं सर्व व्यापी है, जब कि मनुष्य न तो अपने पाह्यान्तर पर ही अधिकार करने में सक्षम है और न ही आन्तरिक उतार चढ़ाव से मुक्ति ही पा सकता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दुई की यह भावना ही है जो धर्म में स्थायित्व स्थापित करती है । ऐसी स्थिति में सुफी मत का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है । विशेष रूप से उनका, जो अद्वैत वादी हैं ।

परन्तु सच्चे धर्म में ऐसा विधान होता है जिससे यह दुई की बाई पाटी जा सकती है । मनुष्य एवं परमसत्ता के मध्य की यह दीवार

जो अलगाव पैदा करती है, धार्मिक/साधनों से गिरायी जा सकती है । उस परम सत्ता का समदरती होना, अपने भक्तों की पुकार सुनकर दौड़े घले आना, अपने भक्तों से अधिक प्रेम करना तथा मोक्ष को प्राप्त कराना आदि साधन मात्र ही हैं । इन साधनों की सहायता से हृदय की छान्नी को पाटकर प्रेम और भक्ति के माध्यम से परमसत्ता से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है । ईश्वर की ओर से भी इस दुई को समाप्त करने के लिए एक सन्देश वाहक भेजा जाता है जो ईश्वर की इच्छा एवं उपदेशों को मनुष्यों तक पहुँचाता है । मनुष्य इन उपदेशों के प्रकाश में भक्ति करते हुये अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है अर्थात् व्यक्तिगत रूप से पुण्य कर्म करते हुये सामाजिक मर्यादाओं का पालन करता है । ऐसा निरन्तर करते हुये वह अनुभव करता है कि परमसत्ता उसके अन्तरात्मा में निवास कर रही है । परमसत्ता के प्रेम में वह इतना रंग जाता है कि उसे उसके बिना स्वर्ग में भी चैन प्राप्त नहीं होता ।

बहिरत में रहकर भी मुझे करार नहीं ।

यह कोई और जगह है, मुझमें बार नहीं ॥

इस प्रकार मनुष्य के उत्तम स्वभाव एवं चरित्र निर्माण का कर्ता एक मात्र धर्म ही है । अतः ईश्वर और मनुष्य के बीच की दूरी को धार्मिक जीवन व्यापित करके कम अथवा समाप्त किया जा सकता है । धर्म, जीवन को आदर्श बनाने में मार्ग - दर्शक का कार्य भी करता है । इस प्रकार के धार्मिक वातावरण में सुफीमत के लिये कोई स्थान नहीं है ।

लेकिन मनुष्य जब इन धार्मिक कार्यों को परम्परा के परितेज में करने लगता है तो उसे अपने अन्तर में आध्यात्मिकता का आभास नहीं होता । मनुष्य परम्परागत रीढ़ियों में लिप्त हो जाता है । इस प्रकार के वातावरण

में ही मनुष्यों को पुनः आध्यात्मिकता में जागृतता के लिये सुफीमत [तसव्वुफ] की आवश्यकता पड़ती है । दूसरे शब्दों में इसे हम आध्यात्मिककाल की संज्ञा से विभूषित कर सकते हैं । इस काल में मनुष्य का यह प्रयास<sup>होता</sup> है कि वह इन निरर्थक एवं काल्पनिक कार्य काण्डों से मुक्ति पाकर वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त कर सके, और उस लक्ष्य तक पहुँचते ही उसकी आत्मा का आरम्भ हुआ था । लक्ष्य की प्राप्ति का अर्थ है - आत्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करना । लक्ष्य प्राप्ति में सफल साधक को ही सुफी कहते हैं । आमतौर पर इस्लाम धर्मावलम्बी रहस्य वादी को ही सुफी कहा जाता है । सुफी सदा इसी प्रयास में संलग्न रहता है कि किसी प्रकार भी आत्मा और परमात्मा का द्वैत समाप्त हो जाय । दोनों का सम्मिलन इस प्रकार हो जाये कि मैं और तू का झगड़ा सदा के लिये समाप्त हो जाये ।

। - मन तू शुद्ध, तू मन शुद्धी, ताक्स न गोयद, बादजी,  
मन दीगरमे, तू दीगरी"  
[मैं तू हो जाऊँ, तू मैं हो जा । जिससे फिर कोई यह न कह सके, मैं और तू, तू और मैं।]

यह प्रेमावेशमय जीवन धन्य है जहाँ आसक्ति और लगन अपने वास्तविक लक्ष्य पर पहुँचकर मानव - जीवन को परिणाम करती है । सुफियों का यह प्रेम दिव्य एवं अलौकिक होता है । निष्काम भावना के साथ प्राणी जगत में निष्कण्टक व्यवहार ही सुफी - जगत का व्यापार है । भावना का<sup>यह</sup> कार्य रूप सुफीमत अथवा तसव्वुफ कहलाता है ।

अब हम सुफी शब्द की व्युत्पत्ति की ओर आपका ध्यान आकर्षित करेंगे ।

### सुफी शब्द की व्युत्पत्ति

जैसा कि सुफी मत के आविर्भाव में बताया जा चुका है कि प्रत्येक सुफी का गन्तव्य एक ही होता है फिर भी उनकी पैश-भूषा, उनकी भक्ति एवं साधना, उनका रहस्यवाद एवं ईश्वर के संबंध में प्राप्त ज्ञान में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य ही लक्षित होता है। ठीक इसी प्रकार सुफी शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर भी अनेक मत-मतान्तर सामने आते हैं। जबकि मूल रूप में सुफी के व्यक्तित्व पर किसी प्रकार भी अर्थ एवं भाव की दृष्टि से प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ विद्वान सुफी शब्द की व्युत्पत्ति "सुफ़" शब्द से मानते हैं। जिसका अर्थ है 'ऊँ'। क्योंकि ये लोग ऊँ की वस्त्र धारण किये रहते थे। कुछ विद्वान सुफी शब्द की व्युत्पत्ति सफ़ [पीक़त] से मानते हैं। उनका कहना है कि ये लोग क्यामत [निर्णय के दिन] में जन साधारण की अपेक्षा पहली सफ़ [पीक़त] में होंगे। कुछ का कहना है कि सुफी शब्द की व्युत्पत्ति सफ़ा [स्वच्छता एवं पीक़तता] से हुई है। उसका यह कारण है कि ये लोग अपने जीवन में किसी भी प्रकार की गली-नता नहीं आने देते थे। स्वच्छता एवं पीक़तता पर बहुत जोर देते थे। बाह्य पीक़तता के साथ-साथ ये आंतरिक पीक़तता एवं हृदय की स्वच्छता पर भी जोर देते थे। "क़ुफ़ल महज़ूब" के लेखक अली हुजवेरी "सफ़ा" शब्द पर अधिक बल देते थे। विद्वानों का कहना है कि ये शब्द अस्तहाब-ये-सुफ़्फ़ा से निकला है। सुफ़्फ़ा शब्द का अर्थ है अरबी भाषा में, पबूतरा। अस्तहाब वे लोग कहलाते हैं जो पैगम्बर मुहम्मद साहब के साथ उठा बैठा करते थे। अतः मुहम्मद साहब के वे साथी जो मदीने की गीत्खद के पबूतरा पर बैठकर-साधना एवं भक्ति में तल्लीन रहते थे। परन्तु शब्द कोश के अनुसार व्युत्पत्ति की दृष्टि से सुफ़्फ़ा से सुफ़्फ़ी या सुफ़्फ़ी बनता है सुफी नहीं। तथापि अर्थ की दृष्टि से सही है। क्योंकि सुफ़्फ़ा की जीवन पर्या अस्तहाब-सुफ़्फ़ा से सुब मिलती है। कुछ विद्वानों का मत है कि सुफी

शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द सोफिया से हुई है । परन्तु यह उचित नहीं लगता । क्योंकि सोफिया तीन ﴿ ٣ ﴾ से लिखा जाता है जबकि सूफी स्याद ﴿ ٧ ﴾ से । एक और विद्वान लतफी जमआ ने अपनी पुस्तक "तारीख-ए-फलासफ़तुल इस्लाम" [इस्लामी दर्शन का इतिहास] में सूफी शब्द की व्युत्पत्ति यूनानी शब्द स्योसोफिया से मानी है, जिसका अर्थ है - ईश्वरीय बोध । सूफी भी ईश्वरीय बोध को प्राप्त करने का इच्छुक होता है । इससे सूफी का अभिप्राय वास्तविक सत्ता का ज्ञान प्राप्त करने से है । इसके समर्थन में श्री लतफी जमआ का कहना है कि यूनानी-दर्शन की पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद होने के पश्चात् ही सूफियों में उक्त धारणा प्रकट हुई थी ।

इमाम कुबरी ने अपने अध्ययन एवं बोध के आधार पर यह तथ्य प्रतिपादित किया है कि सूफी शब्द सन् 200 हिजरी से कुछ पूर्व ही प्रसिद्ध हो चुका था । परन्तु सूफी शब्द का प्रचलन, इसके अधिक प्रभाव-शाली एवं आदर सुपक शब्द सद्दाबा, ताबाईन एवं तबैताबईन की उप-स्थिति में न हो सका था । इनके पश्चात् आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने वालों का अनेक अन्य नामों से भी पुकारा जाने लगा । समय की परिवर्तनशीलता के साथ लोगों के विचारों में भी परिवर्तन आने लगा । वे लोग जो ईशोपासना में अधिक लीन रहते थे अध्यात्मिक रहते थे, समाज उन्हें उब्बाद एवं कुह्दाद के आदरणीय नामों से पुकारता था । थोड़े समय के उपरान्त लोगों ने नये-नये काम, धर्म का नाम लेकर प्रारम्भ कर दिये । ऐसी स्थिति ने वे लोग जो ईश्वर-भक्ति की अपेक्षा कुछ भी पसन्द नहीं करते थे, समय की इस धारा से पृथक् हो गये तथा एकान्त में ईशोपासना में डूब गये । इन्हीं को समाज ने सूफी कहकर पुकारना आरम्भ कर दिया ।

कुछ विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द सफ़ी का बिगड़ा हुआ रूप है जो मूल शब्द सफ़ से बना है । इसके अनुसार सूफी अपनी हार्दिक इच्छा एवं लगन से ईश्वर के समक्ष प्रथम पीकत [नमाज़ के लिये बनाई गई पीकत] में उपस्थित होते हैं । भाव की दृष्टि से तो कोई संकोच नहीं है परन्तु व्याकरण की दृष्टि से सफ़ से सफ़ी बन सकता है न कि सूफी । क्योंकि ये रहस्यवादी ईश्वर के समक्ष अपने हृदय के रहस्य को प्रस्तुत करने के लिये प्रथम पीकत [सफ़] में खड़े होंगे । "अवारिफुल मआरिफ़" लेखक आदरणीय शहाबुद्दीन का मत है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सफ़ [अ] से हुई है । क्योंकि हर सम्प्रदाय में इस प्रकार के व्यक्ति सफ़ के ही वस्त्र-धारण किया करते थे । इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करने वाले वे लोग जो ख़ुरासान के एक पर्वत की "शिमूस्ता" नामक ऊन्दरा में एकान्तवास करके ईशोपासना में संलग्न रहा करते थे, ख़ुरासानी इनको ऊन्दरा से सम्बन्धित होने के कारण "शिमूस्ता" कहते थे । यद्यपि शिमूस्ता फ़ारसी भाषा का एक विशेषण है जिसका अर्थ है "प्रफुल्लता" शायी इन रहस्यवादियों को "जोईया" कहते थे । परन्तु जोईया सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति अब नहीं पाया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह सम्प्रदाय विलुप्त हो गया है । फिर भी उन रहस्यवादियों के लिये सूफी शब्द ही जगत-प्रसिद्ध हो गया है, परन्तु ये शब्द इस्लाम धर्मावलम्बियों में मुहम्मद साहब के समय में प्रचलित नहीं था, वरन् दूसरी शताब्दी हिजरी में उस नाम का उच्चारण सुनने को मिलता है । साथ ही कुछ विद्वानों का मत है कि सूफी शब्द तो प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध था । मुहम्मदसाहब के जीवन-काल में इस शब्द को इसलिये मान्यता नहीं मिली थी कि इससे बढ़कर अन्य शब्द ही अधिक आदर सूचक एवं सम्माननीय समझे जाते थे। जैसे सहाबा [मुहम्मद साहब के साथी] ताबाईन जिन्होंने सहाबा से सम्पर्क स्थापित किया हो और ताबेताबाईन जिन्होंने ताबाईन को देखा हो अथवा



उनसे शिक्षा ग्रहण की हो । इन शब्दों की उपस्थिति में सूफी शब्द को कोई स्थान न मिल सका । तत्पश्चात् सूफी शब्द हिजरी तन् दूसरी शताब्दी के अन्त में लोगों को आकर्षित कर सका । सूफी शब्द उपर्युक्त नामों अथवा उपाधियों से उत्तम नहीं था । इसलिये इसे दूसरी शताब्दी हिजरी के अन्त तक कोई स्थान नहीं मिल सका था ।

उपर्युक्त तथ्यों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति चाहे किसी भी शब्द से हुई हो, परन्तु शब्द सूफी के उच्चारण में सभी का मतेज्य है । इसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि देश और काल की भिन्नता से अप्रभावित हुए यह शब्द आज भी जनसाधारण के लिए नवीन नहीं है और सभी लोग इस शब्द से भली भाँति परिचित हैं । यह दूसरी बात है कि अधिकांश इसके अर्थ से परिचित न हों परन्तु अनुभूति के तौर पर मान्यता अवश्य देते हैं । अब आवश्यकता इस बात की है कि सूफी शब्द की व्याख्या की जाये ।

### सूफी शब्द का अर्थ अर्थात् सूफी कौन है ?

सूफी उस व्यक्ति को कहते हैं जो परमसत्ता से अपनी निकटता प्राप्त का अनवरत प्रयत्न करता रहता है । वह व्यक्ति जो अपने हृदय को समस्त सांसारिक कर्म काण्डों से पृथक् करके पवित्र बनाता है और आदर्श चीज का निर्माण करता है । ये लोग सभी कुछ त्याग कर केवल परम-सत्ता के अस्तित्व को ही स्वीकार करते हैं । सूफी वह व्यक्ति है जो संसार के सभी आनन्दों एवं श्रेष्ठों को तिलांजलि दे देता है । श्रेष्ठ अबू सईद खुराज़ के अनुसार सूफी वह है जो अपने स्वामी से पवित्रता का साबन्ध रखता है । उसी की ज्योति से पूर्ण होता है और उसी के स्मरण में आनन्द

प्राप्त करता है। शैख सुहेल बिन अब्दुल्ला, तुस्तरी के अनुसार सूफी वह है जो अल्पाहारी हो ईश्वर के प्रति आस्थावान हो तथा उसकी मुहिब से निरीलप्त हो। शैख अब्दुल हसन नूरी के अनुसार सूफी वह है जो स्वतंत्र हो, पीर हो तथा प्रदर्शन से दूर हो। इन्हीं के अनुसार सूफी संसार से श्रुता एवं परमसत्ता से मित रहता है। शैख समनून का मत है कि सूफी वह है जिसकी कोई संपीत्त नहीं और न वह किसी का है। शैख अबु अली रोज़ बारी का मत है कि सूफी वह है जो हृदय की पवित्रता के साथ ज़मी वस्त्र धारण करता हो, वासनाओं का दमन करता हो इस्लामी विधान पर जीवन व्यतीत करता हो तथा सांसारिक श्रेय से मुँह मोड़ लेता हो।<sup>1</sup>

शैख अल त्ताम ज़कीरिया अन्तारी के अनुसार सूफी वह है जो निरुत्पट एवं निश्छल हृदय रखता हो, व्यवहार कुशल हो, यही तक कि अन्य लोग उसे सूफी ही कहने लगे। "इमाम कुशरी" अपनी रचना "रिसाला-स-कुशरीया" में लिखते हैं कि सूफी वह है जो हृदय की पवित्रता के साथ व्यवहार कुशल हो तथा अपने अन्तरंग और बहिरंग का सुंदर निर्माण करता हो।

इमाम गुजाली के अनुसार सूफी वह है जो विश्वानुरागी हो, कर्तव्य परायण हो और ऐसा करते हुए अपने जीवन का आदर्श निर्माण करता हो। वासना का दमन करता हो। स्वार्थ एवं अन्य बुराइयों से दूर हो गया हो। अपने हृदय में परमसत्ता के प्रेम के सिवाय किसी अन्य के प्रेम को स्थान न देता हो।

1- देखिये "क़यूस मसूब" अर्द्ध अनुवाद, मक़तबा-स-थानवी देव बन्द, यू०पी०, लेखक-अली हुसैनरी उर्फ़ दाता ग़ैब बज़्र लाहौरी।

शेख अबू मोहम्मद अली गुरेरी का मत है कि सूफी वह है जो उत्तम प्रकृति का हो और समस्त दुर्गुणों का हृदय से त्याग करता हो ।

उपर्युक्त सभी तथ्यों, विवेचनों एवं मान्यताओं के आधार पर यही कहा जा सकता कि सूफी वह है जो अपनी आत्मा को पवित्र करके आदर्श परिश्रम-निर्माण करता हो ।<sup>1</sup> सूफी शिष्टाचार की परिधि से बाहर नहीं जाता । व्यवहार में स्वच्छता एवं निश्चलता ही संसार की भलाई एवं उपकार का आधार है ।<sup>2</sup> सूफी अपनी आत्मा को विष्णु एवं विद्यमान करने वाला व्यक्ति है जो जीवन में सफलता प्राप्त करता है ।<sup>3</sup>

शेख जुनेद के अनुसार सूफी वह है जो अपने अस्तित्व से मृत होकर ईश्वर के अस्तित्व के साथ स्थिर जीवन पाता है ।

हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज के अनुसार सूफी वह है जो अपने आप में अकेला होता है न तो वह किसी को स्वीकार करता है । न उसको कोई स्वीकार करता है । उसकी दृष्टि, बुद्धि, विश्वास में प्रत्येक स्थान पर प्रत्यक्ष रूप में और अप्रत्यक्ष रूप में ईश्वर ही बस जाता है । इसकी अपेक्षा उसका अन्य से संबंध विच्छेद हो जाता है ।

1-पैगम्बर मुहम्मद साहब का यह अपदेश है कि "बुझस्तो लि उनम्मेमा मकारि-गुल अखलाक" अर्थात् मुझे स्वभाव में अशिष्टता को दूर करने के लिये भेजा है।

2-पवित्र कुरान में शिक्षा दी गयी है कि -

अर्थात् व्यवहार की पवित्रता: नैतिकता की शिक्षा दी गई है। "उन्हीं" में से एक ऐसा पैगम्बर उठाया जो उन्हें ईश्वर की निशानियाँ बताता है, उनके जीवन को संवारता है। और उनको पुस्तक **॥कुरान॥** और गहरी समझ की शिक्षा देता है। **॥सू० आलै-इमरान॥**

3-निश्चय ही सफलता पा गया वह, जिसने आत्मा को विष्णु एवं विद्यमान किया और असफल हुआ वह जिसने उसे दबा दिया। **॥सू० अह०अम्स॥**

एक और रहस्यवादी स्वयं के मत में सुफी यह है जो अपनी समस्त इच्छाओं को समाप्त करके परमसत्ता की इच्छा पर जीवन व्यतीत करता है । वह भली-भाँति समझता है कि नश्वर शरीर की इच्छाएँ भी नश्वर होती हैं अतः अब परमसत्ता की इच्छाओं पर जीता है । जो अनश्वर है । अतः उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती ।

"मात्स्य करषवी" के मतानुसार सुफी यह है जो वास्तविक सत्य को तो ग्रहण करता है परन्तु संसार से विमुख होता है । वह इस तथ्य से भी परिचित हो जाता है कि हितकारी एवं अहितकारी केवल यह ब्रह्म ही है तो फिर वह इस ब्रह्म की अपेक्षा सभी को अनदेखा सा कर देता है । इस दृष्टि के प्रत्येक व्यापार को वह उसी के द्वारा धारित सम्झता है ।

शिवली नामी एक प्रसिद्ध रहस्यवादी के मत में सुफी यह है जो संसार से अपना सम्बन्ध तोड़ देता है और ऊँच से जोड़ लेता है !

"पुन्नून" मिश्री का विचार है कि सुफी यह है जो दृष्टि में सर्वोपरि महत्ता ऊँच को देता है और उसे प्रिय बना लेता है । ऊँच भी उसी को महत्त्व देता है एवं प्रिय रखता है ।

। - एक बार अल्लाह ने पैगम्बर मूसा से कहा कि मैंने [अल्लाह ने]

तुझे [मूसा को] अपने लिए पसन्द किया है अथवा पुन लिया है और अन्य से तेरा सम्बन्ध समाप्त कर दिया है और फिर कहा कि तू मुझे कदापि देख नहीं सकता ।

एक महान सूफी अब्दुल कादिर जीलानी का मत है कि सूफी यह है जो! -

- ॥1॥ हज़रत इब्राहीम की भीति दानी हो ।
- ॥2॥ हज़रत इसहाक़ की भीति राज़ी ब रणाये इलाही हो ।
- ॥3॥ हज़रत अय्यूब की भीति सब धैर्य व तहम्मूल इक़तयार करता हो ।
- ॥4॥ हज़रत यूसुफ़ की भीति मुनाजात प्रार्थना करता हो ।
- ॥5॥ हज़रत याहया की भीति पण्ड व ज़िज़ इक़तयार करता हो ।
- ॥6॥ हज़रत मूसा की भीति सूफ़ पहनता हो ।
- ॥7॥ हज़रत ईसा की भीति तैर फ़िल अर्ज़ करता हो ।
- ॥8॥ हज़रत मुहम्मद साहब की भीति फ़िज़ व तयक्कूल इक़तयार करता हो ।

। - फ़ुज़ अलगाँव - लेखक अब्दुल कादिर जीलानी । क्रम संख्या ॥1॥ से ॥8॥ तक आया शब्द "हज़रत" आदर-सूचक है । अरबी भाषा में श्रीमान, महाशय एवं प्रनाब के लिये प्रयोग होता है ।

इब्राहीम - एक पैगम्बर का नाम है जो मध्यपूर्व में लगभग 5000 वर्ष पूर्व हुये हैं ।

राज़ी व रणाये इलाही - ईश्वर की इच्छा के साथ जीवन व्यतीत करना ।

सब व तहम्मूल - धैर्य वान एवं सहिष्णुता

मुनाजात - ईश्वर को समक्ष जानकर उससे प्रार्थना करना ।

इक़तयार - सामर्थ्य

पण्ड व ज़िज़ - बुझना और ईश्वर का स्मरण करना ।

सूफ़ - ज़मी पद

तैर फ़िल अर्ज़ - पृथ्वी पर भ्रमण करना ।

फ़िज़ व तयक्कूल - सन्यास एवं निस्पृहता ।

पुन्यून कामत है कि सुफी यह है जिसके जीवन का लक्ष्य केवल ईश्वर है । जिसकी जिज्ञासा ही केवल ईश्वर-मिलन है । जिसका प्रेम ईश्वर के लिये है । जिसका जीवन, मरण, चिन्तन और जिसकी भीमति केवल ईश्वर के ही लिये है ।<sup>1</sup>

उपर्युक्त मतों, विचारों एवं तथ्यों<sup>के</sup> आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि सुफी केवल हृदय की पवित्रता, तथा चरित्र के सुन्दर निर्माण तक ही सीमित नहीं है वरन् वह अपनी आत्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करके स्थायी जीवन की शान्ति प्राप्त करता है । उसका हृदय ईश्वर का आन्तरिक स्थान है और उसकी दृष्टि में आने वाला ईश्वर का प्रकट रूप है । उसका ज्ञान एवं व्यवहार सब कुछ ईश्वर के ही लिये होता है ।<sup>2</sup>

सुफी अपने जीवन में जिस पद्धति को अपनाता है अथवा सुफी की विचार धारा उसका चिन्तन, ईश्वर और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध तथा आत्मा एवं परमात्मा के मिलन की जो भी रूप रेखा तैयार करता है, अथवा जो भी विधि अपनाता है तत्सर्व्व अथवा सुफीमत कहलाती है । अतः स्वतः ही यह प्रश्न उठ सकता है कि तत्सर्व्व अथवा सुफी मत क्या है ?

1- वा आमेज़िश-श-जानो तन तुई मकसूदम ।  
व जे मुरदन व जोस्तन तुई मकसूदम ॥  
हो जो न बरे कि मन बरफ़तम ज मे यो ।  
जर मन जोयम ज मन तुई मकसूदम ॥

2- "अल्लाहे मेन है सुल वातेन अल्लाहे  
मेन है सुल गीहेर इ लिम उं व अमलुम्म  
मेन ल्लाहे ।"

1.

زآميزش جان و تن توئی مقصودم  
و زمرورن و زلیستن توئی مقصودم  
توزین نبوی که من برفتم زبیاں  
گر من گویم زمین توئی مقصودم  
اللّٰهُ مِنْ حَيْثُ الْبَاطِنُ اللّٰهُ مِنْ حَيْثُ الظّٰهِرُ  
عِلْمٌ وَ عَمَلٌ وَ قِنَ اللّٰهُ

### सुफीमत अथवा तसव्वुफ

इस्लाम धर्म का रहस्यवाद अथवा सुफियों का दर्शन ही तसव्वुफ है । फिर भी सुफीमत की व्याख्या प्रस्तुत करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि सुफी शब्द की व्याख्या भी अनेक रहस्यवादियों ने नाना प्रकार से की है । यह दूसरी बात है कि सभी के मूल पिछार में समानता है, फिर भी व्याख्यानंतर अवश्य पाया जाता है जो उनकी सामा-  
यिक एवं धार्मिक परिस्थितियों एवं परिवेश के ही कारण है । इस प्रकार निश्चित रूप से कहना एवं निर्णय लेना अत्यन्त अनुचित होगा । सुफीमत की कितनी परिभाषायें एवं व्याख्याएँ की गई हैं - इसका अनुमान केवल फ़री-  
दुद्दीन अत्तार की "तज़ीकरुल ओलिया" पुस्तक से भली-भाँति लगाया जा सकता है । "अत्तार" ने सुफीमत से सम्बन्धित लगभग सत्तर परिभाषाएँ दी हैं । दूसरी कठिनाई यह है कि सुफीमत इस्लाम धर्म का कोई सर्वमान्य सम्प्रदाय नहीं है । अतः उसके सिद्धांतों को न तो सुसंघटित एवं नियमित प्रणाली के अंतर्गत रखा जा सकता है और न पूर्ण रूप से इस्लामी विधान [फ़रीअत] की कसौटी पर ही परखा जा सकता है । फिर भी स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि अनेकानेक वैषम्य के होते हुए भी, सुफियों के अंतर्गत कुछ ऐसी मान्यताएँ एवं सिद्धान्त हैं, जिनके आधार पर सभी सुफी सम्प्रदायों में मेल पाया जाता है । इन सभी में कुछ ऐसे मूल सिद्धान्त हैं जिनकी सभी को मान्यता प्राप्त है । एक तो यह है कि ये बड़ी उदार प्रवृत्ति के थे और धार्मिक कट्टरता से हीन थे । परम्परागत नियमों के प्रति भी उदासीन से रहते थे । संसार से विरक्त लगभग सभी सुफी साधकों में समान रूप से दृष्टिनोषर होती थी । जन साधारण इन सभी सम्प्रदाय के सुफियों को आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखता था ।

"मार्फ अल करछी" के मतानुसार सुफियों का मत यह है जिसमें ईश्वर से प्रेम पागलपन की स्थिति तक किया जाये । ये रहस्यवादी साधक, ईश्वर का तानिध्य प्राप्त करने के लिये मानवीय वस्तुओं का त्याग करते हैं । अबुल हुसैन अननुरी का कथन है कि सुफीमत में संसार से पूर्ण आवश्यक है, और उसके साथ ही परमात्मा से प्रेम आवश्यक है । इस प्रकार हम देखते हैं कि सुफीमत [तसव्वुफ] एक सुन्दर व्यक्तित्व है । सुफीमत के अंतर्गत परमात्मा ही का रूप है जो संसार में व्याप्त है । इसी-लिये सुफीमत में किसी भी प्राणी से और विशेषतः किसी मनुष्य से रंग-भेद, भाषा - भेद, धर्म-भेद और जाति-भेद के आधार पर पूर्ण नहीं की जाती । वह तो "यसुयेव कुदुम्बक" का पालन करता हुआ जीवन-निर्वाह करता है । अबु सईद फ़ख़रुल्ला ने सुफीमत की परिभाषा में कहा था कि "एकान्विषय से परमात्मा में ध्यान लगाना ही सुफीमत है।" अबु बक्र शिबली के अनुसार इस जीवन में तथा मृत्युपर्यन्त आने वाले जीवन में परमात्मा के सिवाय किसी और ध्यान न देना ही सुफीमत की विशेषता है । सुफीमत में सुफी को ध्यान एवं कार्य में सामन्जस्य बनाये रखना पड़ता है । सुफीमत में अन्न खोलने और मोन रहने पर अधिक बल दिया जाता है । इसमें वासनायुक्त सभी आनन्दों का परित्याग आवश्यक होता है । सुफीमत के अनुसार हृदय एवं मन दोनों पोषण होने चाहिये । सुफ़वेरी के अनुसार सुफीमत में अपवित्रता को तत्क्षणहीन देना अनिवार्य समझा जाता है । इस प्रकार सुफीमत में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार की पवित्रता का लाना धर्म है । इसमें व्यक्ति को अपनी समस्त इच्छाओं एवं वासनाओं का दमन करके परमात्मा की इच्छा पर ही अपने को छोड़ देना अनिवार्य माना जाता है ।



सूफी मत के अनुसार कष्ट भोगकर तथा तीसारीक वस्तुओं एवं सुखों का त्याग करके इस्लाम धर्म में बताये गये अगले जीवन श्रेष्ठ के उपरीत निर्णय के दिन के सुखों को प्राप्त करना होता है। सूफीमत में निर्धनता को महत्त्व दिया जाता है एवं उसे पुण्य की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। यह निर्धनता ही उसे आगामी जीवन के सुख एवं आनन्दों को प्राप्त करने का साधन है। इसके साथ ही साथ वह अध्यात्मवाद एवं रहस्यवाद की ओर उन्मुख रहता है। यद्यपि अन्य धर्मों के रहस्यवादियों का परम लक्ष्य भी परमात्मा का सम्मिलन ही है, फिर इस्लाम के सूफी साधकों में थोड़ा अन्तर पाया जाता है। इस्लाम धर्मावलम्बी सूफी साधक इस्लाम धर्म के नियमों का पालन करता हुआ परम लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

कुरआन में यद्यपि भक्ति शिष्टाचार, विनम्रता एवं व्यवहार-कुशलता पर अधिक बल दिया गया है, फिर भी कीर्त्य स्थानों पर ईश्वर से प्रेम की बात भी कही गई है जो गौण स्तर में ही है। सूफियों के लिए इतना संकेत भी पर्याप्त है। इसीलिए उन्होंने उपर्युक्त सभी नियमों का पालन करते हुए ईश्वर-प्रेम को भी अपने सिद्धान्तों में सम्मिलित करके उसे प्रमुख स्थान दिया है।

कुछ लोगों का विचार है कि इस्लाम धर्म में रहस्यवादी भावना नहीं है। यह विचार निराधार है। यह तो हो सकता है कि रहस्यवाद को प्रमुख स्थान नहीं मिला हो परन्तु उसे पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता। इस्लाम धर्म के आविर्भाव के समय से ही रहस्यवाद एवं आध्यात्मिकता रहस्यवाद में पायी जाती है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस्लाम

धर्म की आधार शिखा केवल आध्यात्मिकता पर ही निर्भर है। जो संसार में रहकर फली भूत होती है। अन्य धर्मों की भाँति इस्लाम मनुष्य को घर-बार छोड़ने की आज्ञा नहीं देता। सच्चा त्याग तो वास्तव में यही है, जब भोग-पिलास की वस्तुएँ सम्मुख हों और मनुष्य का ध्यान भी उनके बारे में न जाये। इस प्रकार हम अधिकांश सुफियों के जीवन में यही पद्धति अपनाई गई देखते हैं। किसी परिस्थिति में यदि किसी ने स्त्री एवं सन्तान से पृथक् जीवन व्यतीत किया है तो वह उसकी उन्मादावस्था की स्थिति का कारण हो सकता है।

इश्वर-प्रेम के प्रतीक को लेकर अनेक विद्वानों का यह मत है कि यह भावना इस्लाम में अन्य धर्मों के साथ सम्पर्क के कारण आयी है। यह विचार निराधार है। कुरान में इश्वर का यह कहना "कि मैं अपने बन्दे की [दास की अथवा भक्त की] जीवन बाड़ी से भी अधिक निष्ठ हूँ।" क्या यह मनुष्य के प्रति इश्वर के प्रेम की सत्यता नहीं है? यदि इश्वर मनुष्य से प्रेम करता है तो मनुष्य का भी यह कर्तव्य हो जाता है कि वह भी इश्वर से उतना ही प्रेम करे। इसी का आधार मानकर सुफी प्रेम पर अधिक बल देता है। यही तर्क कि वह संसार को इश्वर की प्रीतिच्छाया समझकर सृष्टि के प्रत्येक कर्म में उसी का दर्शन करता है -

"ज़र्रे - ज़र्रे में है वह हुवेदा ।

ज़ोन कहता है देखा नहीं है ।"

इस प्रकार वह सृष्टि और इश्वर में अभिन्नता को मान्यता देता है। सृष्टि और इश्वर की इसी अभिन्नता को अद्वैतवाद का नाम दिया जाता है। यह अद्वैतवाद यद्यपि वेदान्त दर्शन की देन है, लेकिन सुफियों ने इसे अवश्य आत्मसात कर लिया है। सुफियों के यही इस सिद्धान्त को 'बहदतुल वजुद' की संज्ञा दी जाती है।

परन्तु जोध-दर्शित से अध्ययन किया जाये तो यह अद्वैतवाद भी वहीं बाहर से आया प्रतीत नहीं होता, परन्तु इस्लाम के रहस्यवाद में निहित है।

وَحُجَّتُ اقْرَبَ الْيَوْمِ مِنْ حَبْلِ الْوَرِيدِ

### **3-सूफीमत की पृष्ठभूमि**

**।अ। सूफी सम्प्रदाय की धार्मिक पृष्ठभूमि**

**।ब। सूफी सम्प्रदाय की उत्पत्ति का कारण-सूफीसम्प्रदाय की राजनैतिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि**

**।स। सूफियों के विभिन्न सम्प्रदाय**

### सुफ़ी मत की पृष्ठ भूमि: =====

हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु के उपरान्त लगभग तीस वर्ष तक तो मुस्लिम साम्राज्य इस्लामी विधि-विधानों के अनुसार चलता रहा । आगे चलकर मुस्लिम-विजित देशों में फूट पड़ गई । यद्यपि इस फूट का बीजारोपण खिलाफत-काल में ही हो गया था । अब इस्लामके विधि-विधानों की व्याख्या लोग अपनी-अपनी स्थिति को सामने रखकर करने लगे थे । परिणामस्वरूप एक दूसरे पर इस्लाम से विमुख होने का आरोप लगाने लगे । इस प्रकार अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में आये । इन सम्प्रदायों में कुछ तो उदार प्रवृत्ति के थे तथा कुछ अनुदार प्रवृत्ति के संकटर थे । चतुर्थ खलीफा हज़रत अली के समय में ही खारिजी तथा शिया नामक सम्प्रदाय अस्तित्व में आ चुके थे । इनमें से खारिजी अपनी धार्मिक कटरता के सामने दूसरे अन्य सनातनी मुसलमानों को काफ़िर कहकर पुकारता था । इस्लाम के इन दोनों मुख्य सम्प्रदायों में धार्मिक दृष्टिकोण का अलगाव था । खारिजी का अर्थ है - परमात्मा पर विश्वास न रखने वालों के बीच से अपना घेर छोड़कर निकल आना । खारिजी में ही कुछ लोग ऐसे थे जो उपवास एवं नमाज़ पर अधिक बल देते थे । इन को शूरत के नाम से पुकारा जाता है । शूरत का अर्थ है बेपने वाला अर्थात् जो स्वर्ग के बदले में अपना तन, मन, धन सब कुछ बेच डाले । खारिजियों के अनुसार कोई पापी मुसलमान नहीं रह सकता, जबकि सनातन पन्थी मुसलमानों के अनुसार यदि एकेश्वरवादी है तथा मुहम्मद साहब का अनुयायी है तो पाप करने पर भी मुसलमान रह सकता है । शिया सम्प्रदाय यद्यपि प्रारम्भ में खलीफा चतुर्थ के पयन को लेकर राजनीतिक दृष्टिकोण रखता था, परन्तु बाद में धार्मिक सम्प्रदाय बन गया ।

धार्मिक दृष्टि कोण में मतभेद के कारण स्वयं खारिजियों का भी विभाजन हो गया है । प्रमुख रूप से जो निम्नलिखित हैं -

- ॥ १॥ अजादिक सम्प्रदाय - अबू रशीद नफे इब्ने अजरक का अनुयायी
- ॥ २॥ इबाधिया सम्प्रदाय - अब्दुल्ला इब्ने इबाध का अनुयायी
- ॥ ३॥ नफ़दत अजादिया सम्प्रदाय - नफ़दत इब्ने अमीर का अनुयायी
- ॥ ४॥ अदरिद सम्प्रदाय - अब्दुल करीम बिन अजरद का अनुयायी

इसके अतिरिक्त सुफ़ावाद एवं ज़ियादिया सम्प्रदाय और ये । कुछ लोग ज़ाहिरियों तथा बहादियों को भी खारिजियों के उपसम्प्रदाय ही मानते हैं ।

खारिजियों के विरोध में तत्कालीन दो सम्प्रदाय मुरीजी एवं शिया आ खड़े हुए । मुरीजियों के अनुसार किसी भी मुसलमान के पाप पुण्य का निर्णय करने का अधिकार केवल परमात्मा को है । अतः किसी भी मुसलमान को काफ़िर नहीं कहना चाहिए । इसी उदार प्रकृति वाले सम्प्रदाय मुरीजी में इमाम अबू हनीफ़ा भी हुए हैं । जो सुन्नीयों के इमाम हैं । इनके अनुयायियों की संख्या संसार में सर्वाधिक है । आगे चलकर शिया सम्प्रदाय भी अनेक मत भेदों के आधार पर इस्लामली पुत्र नुतेरी तथा यज़ीदी आदि सम्प्रदायों में विभाजित हो गया । यद्यपि इस विभाजन से पूर्ण शिया सम्प्रदायों के दो प्रमुख दल हाशिमिया तथा इमामिया थे । हाशिमियों के अनुसार इमाम बही हो सकता है जो हज़रत अली की सन्तान मेंसे हो । जबकि इमामियों के अनुसार इमाम केवल बही हो सकते हैं जो पैग़म्बर की पुत्री फ़ातिमा की सन्तान में से हो । इमामिया सम्प्रदाय की एक शाखा इस्ना अजादिया है जो बारह इमामों पर विश्वास रखती है । अंतिम एवं बारहवें इमाम मुहम्मद

जिनकी आयु केवल पाँच वर्ष की थी, अपने पिता की खोज में सामने की एक जामा मस्जिद के तहखाने में घुसकर लापता हो गये थे। शिया उन्हीं की प्रतीक्षा में है, इसी लिए कुछ लोग उन्हें मुन्जज़र के नाम से पुकारते हैं। सामान्यतः उन्हें इमाम म्हेदी [प्रथ-प्रदर्शक] के नाम से जाना जाता है। इमामिया सम्प्रदाय में भी इमामों की संख्या को लेकर दोनों दल सामने आये। एक तो वही जो बारह इमामों को मानता था। क्या दूसरा वह जो केवल सात इमामों पर ही विश्वास रखता था। सात इमामों पर विश्वास रखने वालों को सातिया कहते हैं। प्रथम छह इमामों तक दोनों दल सहमत थे, परन्तु सातवें इमाम को लेकर दोनों में मतभेद उत्पन्न हो गया। कुछ शिया भूता अल काज़िम को सातवाँ इमाम मानते हैं तो दूसरे इस्माईल को सातवाँ इमाम मानते हैं और घोषित करते हैं। इस्माईल को सातवाँ इमाम मानने वाले इस्माईली कहलाते हैं। आगे चलकर इस्माईलियों में भी मतभेद हो गया। इनमें कुछ तो इस्माईल को ही सातवाँ इमाम मानते हैं और कुछ इस्माईल-पुत्र मुहम्मद को सातवाँ इमाम मानते हैं। उनका कहना है कि पिता के जीवन काल में ही इस्माईल की मृत्यु हो जाने के कारण वह इमाम नहीं रहे, परन्तु उनके पुत्र मुहम्मद को ही सातवाँ एवं अंतिम इमाम मानते हैं। इस मत के मानने वालों की बाकिनी भी कहते हैं, क्योंकि बाह्य रूप में जो प्रकट हो रहा है, उसके पीछे वास्तविक सत्य बाकिनी [छिपा हुआ] है। इस मत का प्रेरणार्थक संपर्क करने वाला कूफा निवासी एक व्यक्ति था, जिसका नाम करमत था। ठिगने कद के कारण ही उसका नाम करमत था। यद्यपि उसका वास्तविक नाम हमदान बिन अल अज़ास था। इसी के नाम पर इस्माईली सम्प्रदाय कानमकरमती सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ।

सात और बारह की संख्या को लेकर उनके अनुयायियों ने उसे अलौकिक रूप दे दिया। इन संख्याओं का सम्बन्ध उन्होंने प्रकृति के अनेक

व्यापारों से जोड़ दिया । जैसे गृह सात है, तो राशियाँ बारह हैं । सप्ताह के दिन सात हैं तो साल के महीने बारह हैं आदि । इनमें से सातव्या के अनुसार पैगम्बर भी सात हुए हैं । जैसे आदम, नूह, इब्राहीम, मूसा, ईसा और मुहम्मद साहब । सातवें तथा अंतिम पैगम्बर मुहम्मद बिन इस्माईल है । शिखा सम्प्रदाय के नुसैरी, दुष तथा करमती आदि उपसम्प्रदाय हैं । जिनसे अन्य शिखा सम्प्रदायों का धार्मिक दृष्टिकोण बिलकुल मेल नहीं खाता । एक शाखा ज़ेदी भी है जो सुन्नीयों के अधिक निकट है । यह अन्य शिखा सम्प्रदायों की भीति तड़प्या, अदृश्य इमाम आदि पर विश्वास नहीं रखते । दूसरी ओर हसन अल बसरी के एक शिष्य वासिलीबिन अता अल गण्जालने जो ईरानी था, मुत्तिज़िला सम्प्रदाय की नींव डाली । इस सम्प्रदाय का सिद्धान्त तर्क पर आधारित था । मुत्तिज़िला वाले परमात्मा में किसी भी गुण का आरोप करने को तैयार नहीं थे । उनके मतानुसार इन गुणों से ऐकेश्वर वाद के सिद्धान्त का विरोध होता है । इनके सिद्धान्त का प्रभाव आम जनता पर नहीं पड़ा ।

दसवीं शताब्दी ई० के मध्य में अबूक हसन अल अशारी ने सनातन धर्म की बुराइयों को दूर करते हुए मुत्तिज़िला सिद्धान्त का विरोध शिखा । यद्यपि अशारी पूर्व में मुत्तिज़िला सिद्धान्त का समर्थक था । इस प्रकार इस्लाम के अन्य सम्प्रदायों की भीति मुत्तिज़िला को कोई विशेष सफलता नहीं मिली । इससे इतना अवश्य हुआ कि इस्लाम के अनुयायियों को एक नये ढंग से विचार करने का मार्ग प्रशस्त हो गया । विचार स्वातंत्र्य के लिए एक उचित वातावरण उपलब्ध हो गया । परिणाम स्वरूप इक़बानुस्सफ़ा आदि जैसे दल अस्तित्व में आ गये । जिसका अर्थ है "पवित्र आत्माओं की निरादरी" । इनका उद्देश्य धार्मिक पवित्र रथ सत्य के मार्ग पर चलकर परमात्मा का अनुग्रह प्राप्त

करना था । साथ ही वह चाहते थे कि इस्लामी जगत में जन साधारण ज्ञान विज्ञान एवं धार्मिक दर्शन से भली भाँति परिचित हो जाय । इसके लिए उन्होंने लगभग पचास ग्रन्थों की रचना की थी । उनका कहना था कि अज्ञानता के कारण ही लोगों से धार्मिक द्रव्या कलाओं में गलतियाँ हो जाती हैं । इसके प्रमुख व्यक्तियों में अबू सुलेमान मुहम्मद बिन मौअज़र अल बैयुस्ती अथवा अल मुक़दसी, अबुल हसन अली बिन हात्मन, अल ज़िजानी, अबू अहमद, अल मिहजानी [नहज़ूरी] अल ओफ़ी और फ़या बिन रिफ़ाआ आदि हैं ।

इधर सुन्नी सम्प्रदाय की चार प्रमुख शाखाएँ हैं -

॥1॥ हनफीशाखा - संस्थापक अबू हनीफ़ा [सबसे पुरानी शाखा] । संस्थापक का जन्म सन् 700 ई० में और मृत्यु सन् 767 ई० में है । इसमें क़ुरआन पर अधिक बल दिया जाता है । इसी सम्प्रदाय के लोगों की संख्या संसार में सबसे अधिक है ।

॥2॥ मालिकी शाखा - संस्थापक इमाम मालिक इब्ने अन्नस हैं । इनका जन्म 713 ई० तथा मृत्यु 795 ई० में हुई ।

॥3॥ शाफ़ई शाखा - संस्थापक का नाम मुहम्मद इब्ने इदरीस अल शाफ़ई है । इनका जन्म 767 ई० तथा मृत्यु 820 ई० में हुयी ।

॥4॥ हम्बली शाखा - संस्थापक अहमद इब्ने हम्बल है । इनका जन्म 780 ई० और मृत्यु 855 ई० में हुयी ।

उपर्युक्त चारों म्दानुभाव सुन्नियों के इमाम कहलाते हैं । इन चारों से सभी की सहमीत है ।

इस प्रकार हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् इस्लामी जगत में विभिन्न विचार धाराएँ बनपना प्रारंभ हो रही थी । सातवीं शताब्दी



से ग्यारहवीं शताब्दी तक इस्लामी जगत में धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, परिस्थितियों एक दूसरे पर आधारित थीं। एक के बिना समझे दूसरे को समझना कठिन है। इन्हीं परिस्थितियों में सूफी मत का विकास हुआ तथा अनेक सूफी सम्प्रदाय एक के पश्चात् दूसरे अस्तित्व में आते गये।

### **"सूफी सम्प्रदाय की धार्मिक पृष्ठ भूमि:"**

इस्लाम धर्म के पैगम्बर मुहम्मद साहब की हदीस<sup>1</sup> है- "मेरे सहाबा मिस्ल सितारों के हैं, वस उनकी पेरवी करोगे तो हिदायत पाओगे"। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुहम्मद साहब ने अपने विशिष्ट साधियों की जीवन पर्या को भी मुसलमानों के लिए एक मापदण्ड घोषित किया है। अतः इस्लामी जगत में मुहम्मद साहब के इन्हीं विशिष्ट साधियों [हजरत अबू बकर, हजरत उमर, हजरत उतमान और हजरत अली] की जीवन यापन-पद्धति से भी प्रत्येक मुसलमान अपनी जीवन यापन पद्धति के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है और प्रगल्भ-शील रहता है कि उन्हीं के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाये। सूफी जगत में तो उसका दृढ़ता से पालन किया गया है। उपर्युक्त इन्हीं चार सहाबियों से सूफियों ने अपना आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित किया है। इस प्रकार से सूफियों का सम्बन्ध इन सहाबियों के माध्यम से पैगम्बर मुहम्मद साहब से स्थापित हो जाता है। सूफी तो मुहम्मद साहब को ही रहस्यवाद का स्रोत स्वीकार करते हैं। सूफियों का कहना है कि मुहम्मद साहब को ईश्वर ने दो प्रकार के ज्ञान से विभूषित किया था एक का नाम है "इल्म सफीना" और दूसरे का नाम है "इल्म सीना"। सूफियों का सम्बन्ध इसी दूसरे "इल्म-से-सीना" से है। इतना ही नहीं सूफियों ने तो अपने मत को इस्लाम-अनुमोदित ठहराने के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किये। यद्यपि कुरान में इसका सक्ति स्पष्ट रूप में नहीं है। फिर भी खीच-तान करके सूफियों ने तत्त्ववुक्त का बीजारोपण आदम में 9 अंकुर

1- असहाबी कन्नुज्जे अयोहिम इल्मदेहुम  
इहतेदैतुम  
(मिशकाह अरीफ)  
(مشكاة شریف)

नूह में अली इब्राहीम में, विकास मुसा में, परिपक्वता तथा मधु का फला-  
 गम मुहम्मद साहब में सिद्ध करने का प्रयास किया है । इस प्रकार सूफियों  
 ने अपने मत का मूल स्रोत पैगम्बर मुहम्मद साहब की ही ठहराया है । उनका  
 यह भी कहना है कि "इल्म-ए-सीना" का ज्ञान पैगम्बर मुहम्मद साहब ने  
 केवल अली को ही दिया था । अली से बसरा के अल हसन के माध्यम से उन  
 तक पहुँचा है । अधिकांश के मतानुसार "इल्म-ए-सीना" का ज्ञान अली से  
 इमाम हसन, इमाम हसन से इमाम हुसैन इन से हसन बसरी, हसन बसरी से  
 कुमेल बिन ज़ियाद के माध्यम से उन तक पहुँचा है । अतः अली के पश्चात्  
 इमाम हसन, हुसैन, बसरी और कुमेल बिन ज़ियाद को ही चार पीरों की  
 संज्ञा से विभूषित किया जाता है । सूफी हसन बसरी को अली का आध्या-  
 त्मिक शिष्य तथा अपना आध्यात्मिक गुरु मानते हैं हसन बसरी का जन्म  
 642 ई० में मदीने में हुआ था । और वह तिमैन के युद्ध में अली की सेना  
 के साथ सम्मिलित होकर युद्ध भूमि में गये भी थे । कुवाजा हसन बसरी के  
 शिष्यों में से दो खलीफा नियुक्त हुये थे जो चौदह खान वादों<sup>तारिफा</sup> परिवारों  
 के जन्मदाता बने । निम्नलिखित आध्यात्मिक वंश<sup>तारिफा</sup> से अली भीरित स्पष्ट  
 हो जाता है ।

वीज पृथक् ।

पुष्पमद १ विष्णु पर १

अस्ति १ पशुमं वृत्तिप्राप्त १

पार, पीर



इमां हसन १ अस्ति के बड़े पुत्र १

इमां हसन १ अस्ति के छोटे पुत्र १

अत हसन १ बसरा निवासी १

कुम्भत विजय विष्णुमद

दी वृत्तिप्राप्त

अबुल पाहिद विजय पिर

पीरद वृत्तिप्राप्त

वृत्तिप्राप्त

अवृत्तिप्राप्त

अवृत्तिप्राप्त

वृत्तिप्राप्त

विषयित्या

वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त



हृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त वृत्तिप्राप्त

इस प्रकार उपर्युक्त श्रृंखला से प्रतीत होता है कि देश, तथा प्राप्त की भिन्नता होती है इसे भी सभी एक ही वृत्ति में वही विद्यमान देते हैं । यही वृत्ति है जिसने सैतार के अनेक धार्मिक विचारों को एक ही वृत्ति में पिरोकर एक माला बना दिया और वही माला मुसलमान कहलायी । इस सब करने का यह कीर्तन और असमभव ज्ञान पड़ने वाला कार्य इन्हीं सुविचारों और उनके विचारों ने देश-देशान्तर में जा-जाकर सहज ही पूर्ण कर दिया । यह कार्य करने की प्रेरणा उन्हें इस्लाम से प्राप्त हुई ।

१- "तुम्हारे-स-साँवर" मुस्तफाई प्रेस, आगरा, पृष्ठ ११

### सूफी सम्प्रदाय की उत्पत्ति का कारण

इस्लाम धर्म में रक्षक-उपासना, हृदय की शुद्धता सीसारिकता से निर्लिप्त रहना सभी प्राणी मात्र के प्रति सम्भाव्य रखना, सत्य का पालन करना, शिष्टे गये धातु को निभाना, अत्याचार का मुकाबला करना, अस्वास्थ्य की सहायता करना, बड़ों का आदर करना, बच्चों से प्रेम करना एवं दूसरे धर्म की निन्दा न करना तथा धार्मिक विश्वास के अनुसार किसी को इस्लाम धर्म को स्वीकार करने पर बाध्य न करना, आदि बातों पर विशेष बल दिया गया है । यद्यपि इस्लाम धर्म में सन्यास को अन्य धर्मों की भाँति मान्यता प्राप्त नहीं है । अन्य धर्मविलम्बी संसार त्याग कर दूर धन में स्वीकृत वास को ही सन्यास का मुख्य लक्ष्य मानते हैं परन्तु इस्लाम धर्म की शिक्षा के अनुसार मनुष्यों को संसार में रहकर वे सभी कार्य करने हैं जो उसके उत्तरदायित्व में पहले से मौजूद हैं । उसे तो केवल सीसारिक वासना को तिलीणिनी देनी होती है । इस्लाम धर्म चाहता है कि मनुष्य को संसार में रहकर ही धार्मिक जीवन व्यतीत करना है सीसारिक सुख सुविधाओं एवं वासनाओं से सम्बन्ध होते हुए भी उनसे दूर रहकर एक सच्चे मुसलमान को अपना जीवन व्यतीत करना है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य संसार में तो रहे परन्तु संसारिकता से दूर रहे ।

उपर्युक्त सभी लक्षण हमें सूफियों में दृष्टिगोचर होते हैं । यद्यपि सभी सूफियों के लक्ष्य एवं उद्देश्य समान होते हुए भी हम उनके जीवन में उनके आधार विचारों में उनकी भिन्न पद्धति में रीति, नमाज़ आदि में हम भिन्नता पाते हैं । यह भिन्नता उनके देश, काल, जलवायु, वातावरण एवं पूर्व संस्कारों के कारण ही है । जिस परिवेश में सूफी जीवन व्यतीत

करता है उसका प्रभाव उसके जीवन पर पड़ना अवश्यम भावी है। वही कारण है कि सूफियों में अनेक सम्प्रदाय अस्तित्व में आये। इन सम्प्रदायों का नामकरण स्थान विशेष, व्यक्ति विशेष अथवा किसी घटना विशेष के आधार पर ही हुआ है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में तो ये लोग केवल एक साथ ही समझे जाते थे। न उनका कोई सम्प्रदाय विशेष था और न कोई अलग से आचार दिया र सींहता। सभी की आचार सींहता का आधार केवल कुरान पाक और अहादीस था। प्रत्येक सूफी के लिए ये क़ौदी के रूप में थी।

प्रारम्भिक सूफी साधकों में अबूजर एवं हुदैफा के नाम उल्लेखनीय हैं जो हज़रत मुहम्मद साहब के समकालीन थे। सीसारिक प्रलोभनों से बचना तथा परमात्मा पर पूर्ण रूप से निर्भर करना इनके जीवन में रस बस गया था। मुहम्मद साहब के देहान्त के पश्चात् इस्लामी जगत में बड़ी उल्ल-पुल्ल मच गई थी जिसके परिणाम स्वरूप श्रीतीप्रिय लोग जो ईश्वरोपासना में ही तल्लीन रहते थे, सकांतवास में चले गये थे। अज्ञात एवं वासनामय वातावरण में रहकर वह ध्यान का अनुभव करते थे।

इन सूफियों में इस्लामी जगत के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्ति सम्मिलित थे। अतः इनमें तो भी पारस्परिक मतभेद देखने को मिलते हैं। ये देश विशेष के परिवेश का ही कारण थे। इतना होने पर भी इन सूफियों ने अपने आप को इस्लाम के मूल विधी विधानों एवं सिद्धांतों से अलग नहीं किया था। अपने जीवन का मापदंड वे कुरान पाक और अहादीस को ही ठहराते थे।

### सूफियों के विभिन्न सम्प्रदाय :-

सूफी साधकों ने कुरान पाक और अहादीस की व्याख्या अपने-अपने आधार पर की हैं। इसके कारण भी वैयक्तिक भिन्नता उत्पन्न हो गई थी। सनातनी मुसलमानों में तो केवल पाँच समय की नमाज़ का ही प्रति दिन विधान है परन्तु सूफियों ने इसे अधिक नमाज़ों का विधान अपने हित में बना दिया है। किसी के अनुसार अल्पाहार, किसी के अनुसार अधिक बल अनाहार दिया गया है। क्योंकि इससे साधना में एकाग्रचित होने में सहायता मिलती है। हालाँकि इस्लाम ने अल्पाहार पर तो बल दिया है परन्तु अनाहार के सम्बन्ध में सूफियों ने अनेक लाभ गिनाये हैं। उनके मतानुसार धनमुक्ता, एकाग्रचित्तन में सहायता स्वस्थता आध्यात्मिकता, आनन्द आदि अनाहार से प्राप्त होते हैं। कुछ ज़मी वस्त्र पहनने पर बल दिया करते हैं तो कुछ गुदड़ी पहनने पर, कुछ दीनता के जीवन को उत्तम बताते हैं तो कुछ श्रेष्ठरीयवान जीवन को। कुछ के अनुसार ज़मी वस्त्र गुदड़ी धिरका आदि पहनना चाहिए और कुछ के अनुसार यह सब बाह्याङ्ग-भर है। ईश्वर तो मन की पवित्रता एवं हृदय की निष्कलता को देखता है। कुछ एकान्तवास को अधिक लाभदायक बताते हैं तो कुछ इससे सहमत नहीं हैं। इस प्रकार सूफियों के अन्दर अनेक मतमतान्तर उत्पन्न हो गये। परिरजाम स्थल्य सूफी अनेक वैपारिक ठेगों में विभाजित हो गये। इन्हीं को हम विभिन्न सम्प्रदायों की संज्ञा से विभूषित करते हैं।

#### 4- सूफी-विचार धारा का उद्भव तथा विकास-प्रमुख सूफी

सन्तों का संक्षिप्त विवरण

॥अ॥ गुरातान और दौलीगिस्थाना के सूफी

॥ब॥ ईरान तथा उसके आसपास के सूफी

॥ग॥ शाम और सिन्न के सूफी

॥द॥ अफगाण के सूफी

॥घ॥ सूफी-जगत के विभिन्न सम्प्रदाय-क़ादिरिया, सुहरवर्दिया,  
नज़्मवन्दिया तथा चिश्तिया सम्प्रदाय

॥र॥ भारत वर्ष में चिश्तिया सम्प्रदाय [सिलसिले] का शुभारम्भ

## सूफी विचार धारा का उद्भव और विकास

### प्रमुख सूफी सन्तों का संक्षिप्त विवरण -

इस्लाम की प्रारम्भिक चार शताब्दियों में सूफी मत के अग्रणी रहस्यवादियों के प्रमुख केन्द्र मक्का, मदीना, बसरा और कूफ़ा थे । इसके अतिरिक्त ईरान और ख़ुरासान भी प्रमुख केन्द्रों में गिने जाते थे । निःसन्देह संसार में सूफी मत का प्रचार एवं प्रसार इन्हीं केन्द्रों से हुआ था । सुविधा की दृष्टि से हम इन केन्द्रों को चार भागों में विभाजित कर सकते हैं -

॥१॥ ख़ुरासान और ट्रांसोक्सियाना ।

॥२॥ ईरान और दूसरे भाग ।

॥३॥ शाम और मिस्र ।

॥४॥ बग़दाद ।

उपर्युक्त केन्द्रों में जो प्रमुख सूफी हुये हैं, यह आवश्यक है कि उनका संक्षिप्त विवरण दे दिया जाय जिससे यह भली भाँति समझ में आ जायेगा कि किस प्रमुख सूफी की विचार धारा किन तथ्यों पर आधारित है, और क़ुरान तथा - हदीस से किस सीमा तक अनुमोदित है ।

॥१॥ हसन बसरी -

इनका जन्म 642 ई० में मदीना में हुआ था । ये हज़रत अली के शिष्य थे । यह अपने समय के बहुत बड़े विद्वान और वक्ता थे इनके समय तक मुस्लिम सन्त उन के चरम अधिकता से धारण करने लगे थे ।



मुताज़िला सम्प्रदाय के प्रवर्तक "वासिल बिन अता" भी इनके शिष्य थे । अबूतालिब मक्की, जो कि सूफीमत पर लिखी प्रारम्भिक पुस्तक "कुत-अल-कुसूब" के लेखक थे, हसन बसरी को सूफियों का नेता अध्या अग्रणी घोषित करते हैं । हसन बसरी का देहान्त सन् 728 ई० में हुआ था । ये कट्टर पंथी सम्प्रदाय में भी उतने ही आदरणीय थे जितने सूफी सम्प्रदाय में ।

### §2§ हबीब अजमी -

इनका पूरा नाम हबीब इब्ने मुहम्मद अजमी था । यह हसन बसरी के शिष्य थे ।

### §3§ मासिक बिन दीनार -

यह भी हसन बसरी के शिष्य थे । इनका मत था कि जमी वस्त्र पहनी धारण कर सकता है जिसका हृदय शुद्ध हो । इनकी मृत्यु सन् 744 ई० में हुई ।

### §4§ राबिया बसरी -

इनका पूरा नाम राबिया बिन्ते इल्माईल अल अदीब्या था । इनके पिता अत्यन्त निर्धन थे । अपने माता-पिता के देहान्त के पश्चात् राबिया को बचपन में ही छः दिरहमों<sup>1</sup> बेच दिया गया था । इनका ईश्वर के प्रति असीम एवं अनन्य प्रेम था । इनका देहान्त सन् 752 ई० में हुआ था । कहा जाता है कि उस समय में प्रसिद्ध सूफी हसन बसरी,

§1§ एक दिरहम का मूल्य एक पैनी के मूल्य से भी कम होता है ।

मालिक बिन दीनार, सुफ़ियान सुरी और अफ़ीक़ बलख़ी ने इनसे अनेक बार मुलाकात की थी ।

#### §5§ अबूहाशिम सूफ़ी -

मुसलिम जगत में सर्वप्रथम सूफ़ी नाम से पुकारे जाने वाले अबू-हाशिम सूफ़ी हैं । इनका देहान्त आठवीं शताब्दी के अन्त में हुआ था । इन्होंने यस्सलम में रमला नामक स्थान पर एक ख़ानकाह का निर्माण भी कराया था । वे सुफ़ियान सुरी के साथियों में से थे । इनका कहना था कि एक सुई से पहाड़ तो छोड़ना सम्भव है परन्तु हृदय को अभियान और अहंकार से अलग रखना अति कठिन है ।

#### §6§ सुफ़ियान सुरी -

इनका पूरा नाम अबू अब्दुल्ला सुफ़ियान इब्ने सीद अल सुरी था । इनका जन्म 715 में हुआ था । ये हदीस के अच्छे विद्वान थे । बाद में इन्होंने फ़कीरी जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया । इनका देहान्त 777 ई० में बसरा में हुआ था । यह बाज़ार से पिछड़ा बेपने वाले से पिछड़ा खरीद लाया करते थे और उन्हें स्वतन्त्र छोड़ दिया करते थे । इनके समय तक मक्का, मदीना, बसरा और कूफ़ा सुफ़ियों के केन्द्र बन चुके थे । इनकी अपेक्षा ईरान तथा ख़ुरासान भी ऐसे स्थान थे जहाँ सूफ़ी मत तेज़ी से पनप रहा था ।

#### ख़ुरासान और दौस्तोख़ियाना के सूफ़ी

#### §7§ इब्राहीम बिन अधम बलख़ी -

इनका पूरा नाम इब्राहीम बिन अधम था । यह एक राजकुमार

थे । परन्तु इन्होंने राजपाठ त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया था । इनका जन्म सन् 730 ई० के लगभग बलख में हुआ था । इन्होंने विवाह भी किया था । एक पुत्र की प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने बलख त्याग दिया था । इन्होंने मक्का की यात्रा हज के उद्देश्य से की थी परन्तु वहीं जाकर रहने लगे । कुछ समय वहीं रहने के उपरान्त वहीं से चले आये । इनका देहान्त सन् 777 ई० में हुआ था । इनका ध्यान सदा ईश्वर के गुण-गान में ही लगा रहता था ।

### 18। अबू अली शफीक़ बिन इब्नाहीम अल-अज़ाली -

यह भी बलख के रहने वाले थे । इन्होंने धार्मिक शिक्षा में निपुणता प्राप्त कर ली थी तथा अपनी जीविका कमाने लगे थे । बाद में इन्होंने भी सन्यास ग्रहण कर लिया था । इन्होंने सूफी मत पर अनेक पुस्तकों की रचना की थी । तुर्की में जिहाद करते हुये 810 ई० में इनका देहान्त हो गया । " अबू अब्दुर्रहमान हातिम बिन उनवान अल असम " इनका शिष्य था । हातिम बिन असम का देहान्त सन् 851 ई० में तिरमिज़ के निकट वाशजर्द में हुआ था ।

### 19। अबू हासिम अहमद इब्ने ख़ुरैश्था -

इनका जन्म सन् 759 ई० के लगभग हुआ था । यह भी बलख के निवासी थे । इनका विवाह वहीं के गवर्नर की पुत्री से हुआ था । सन्यास ग्रहण करने के पश्चात् हातिम अल असम और अबू यज़ीद बिस्तामी के बरतसंग में रहे । वे फ़ौफी वेश-भूषा में रहा करते थे । 85 वर्ष की आयु के उपरान्त इनका देहान्त सन् 854 ई० के लगभग हो गया ।

### ॥ 10॥ अबू अली पुत्र इनके इयाज अल तलकनी -

इनका जन्म समर कन्द में हुआ था । युवावस्था तक न तो ये बड़े विद्वान थे और न कोई बड़े व्यापारी । ये मर्ग और अबी वरद के मध्य मार्ग में व्यापारियों को लुटने का कार्य करते थे । एक बार जब एक कारिफे में कोई कुरान की इस आयात को पढ़ता हुआ आया कि "अथा मुसलमानों पर अभी वह समय नहीं आया कि वे अल्लाह के पित्र और उसकी किताब की तरफ झुक जायें" तो इसे सुनकर इनकी पलट हो गयी और लुटा हुआ सभी माल वापस कर दिया और वे कूफा चले गये । वहीं जाकर हदीस अध्ययन किया तथा सुमान सुरी के शिष्य हो गये । तत्पश्चात् उन्होंने मक्का में ही अपना शेष जीवन तपस्या में व्यतीत किया । इनका देहान्त सन् 803 ई० में हुआ ।

### ॥ 11॥ अबू अब्दुरहमान अब्दुल्ला इनके अल मुबारक हन्पली -

इनका जन्म सन् 736 ई० में हुआ था । इनके पिता तुर्क और माता ईरानी थी । ये बहुत फनी व्यापारी थे । इसके साथ ही साथ इन्होंने मर्ग तथा अन्य स्थानों पर अध्ययन भी किया था । प्रत्येक दूसरे वर्ष वे हज्र को जाते थे तथा जिह्दाद में भाग लिया करते थे । तीसरे वर्ष अपने लाभ को निधनों में बाँटा करते थे । देहान्त 797 ई० में हित में हुआ था । इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की थी ।

### ॥ 12॥ अबू नसर बिन इनके जल-हारिस अल हाफी -

मर्ग में ये बड़े उच्च शीवियों के सुफियों में गिने जाते थे । प्रारम्भ में ये शराबी थे । एक बार जब ये जा रहे थे तो इन्हें सहक

पर एक कागज मिला जिस पर लिखा था "अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही दयालु और क्षमाशील है" । उसे उठा कर घर जाकर रख दिया और उसके पश्चात् ही इनकी काया पलट हो गयी, जब कि स्वप्न में ईश्वर ने इनके इस कार्य को पसन्द किया । उसी समय से प्रसिद्ध सुफी फ़ौज की संगति में रहने लगे तथा अपने मामू के शिष्य हो गये । इनके मतानुसार आध्यात्मिक शक्ति जन साधारण की सेवा करके प्राप्त की जा सकती है । इन की दृष्टि में हज से अधिक पुण्य किसी विधवा स्त्री अथवा निर्धन मनुष्य की सहायता करना है । इन्होंने विवाह नहीं किया था, परन्तु विवाह के विरुद्ध नहीं थे । इनका देहान्त बग़दाद में सन् 841 ई० में हुआ था ।

### ॥ 13 ॥ अबुल अब्बास कासिम बिन अल महदी अल सय्यारी -

ये भी मर्द के रहने वाले थे । इनके मतानुसार ईश्वर से एकाकार उसी समय सम्भव है जब संसार की प्रत्येक वस्तु से अपना ध्यान हटा ले । इन्होंने दो बातों - "एकता तथा पृथक्ता पर अधिक बल दिया है । एकता से तात्पर्य वह सभी कुछ जो ईश्वर से मेल कराने में सहायक हो तथा पृथक्ता से तात्पर्य वह सभी कुछ जो ईश्वर से मेल कराने में बाधक हो । इनका देहान्त सन् 953 ई० में मर्द में हुआ था ।

### ॥ 14 ॥ अबुतराब अस्कर बिन अल हुसैन अल-नसाफी नकुषबी -

ये हाशिम असम के साधियों में से एक थे । इनके मतानुसार किसी दरवेश ने अपने भोजन और वस्त्र का पयन नहीं किया है । उसका चिन्तन ही उसका भोजन है तथा उसकी पवित्रता ही उसका वस्त्र है । इनका देहान्त सन् 859 ई० में हुआ था ।

### ॥ 15॥ अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्ने अली बिन अल हुसेन अल हाकिम -

अल तिरमिज़ी :-

ये तिरमिज़ी के बड़े सुफ़ियों में गिने जाते थे । इनकी विचार धारा को आगे चलकर इमाम गुज़ाली और इब्नुल अरबी ने विचार से लोगों के सामने रखा । इन्होंने तुराब नक्खबन्दी और अहमद हब्ने ख़रौईया से भी सम्पर्क स्थापित किया था जो कि हदीस, फ़िक्का और क़ुरान के प्रसिद्ध विद्वान थे । यह भी फ़िक्का, हदीस और क़ुरआन के विद्वान और मनीषी थे । इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में "सतमुल ओलिया", किताबुल नहज, नपादिल्ल उसूल, किताबुल तोहीद तथा किताब अज़ाबुल क़ब्र आदि हैं इनका देहान्त नीझापुर में सन् 898 ई० के लगभग हुआ था ।

### ॥ 16॥ अबूहफ़स अम्र बिन सलामा अल हददाद नीझापुरी -

ये नीझापुर के प्रारम्भिक सुफ़ियों में अधिक प्रसिद्ध हुये हैं । ये सुहार का काम करते थे । एक यहुदी से मुठभेड़, के पश्चात् ही उन्होंने सन्ध्यास ले लिया था । जब ये बग़दाद गये थे तो इन्होंने अपने साथी अन्य सुफ़ियों को अरबी वाक्यद्वारा के आश्चर्य प्रकट कर दिया था । इनका देहान्त नीझापुर में 879 में हुआ था ।

### ॥ 17॥ अबू सातिह हमदून बिन अहमद बिन उमारा अल कुस्तार नीझापुरी-

सूफीमत में इन्होंने अपूर्व मार्ग का निगमन किया था । ये बहुत बड़े धर्मनिष्ठ एवं धर्मज्ञाता थे । इनका मार्ग मलामती था । इनके मतानुसार पितना सूफी मानव मात्र से अलग होता जायेगा । उक्त ईश्वर के निकट होता जायेगा । इनका देहान्त सन् 884 ई० में हुआ था ।

### ॥ 18 ॥ अबू उसमान साद बिन इस्माईल अल हीरी -

नीझापुर के सूफियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है । वास्तव में ये रे के रहने वाले थे । कुछ समय इन्होंने याहया बिन मआज अलराजी और शाहकुजा किरमानी के साथ व्यतीत किया था । याहया के साहचर्य-से अल हीरी के हृदय में आशा का संसार होने लगा था । ये अबू हफस के शिष्य थे , जिन्होंने इन्हें प्रेम से परिपूर्ण कर दिया था । इनका देहान्त नीझापुर में सन् 910 ई० में हुआ था ।

### ॥ 19 ॥ अबू फकीरया याहया बिन मआज अल राजी -

इनका वास्तविक निवास स्थान रे था, जो तेहरान के निकट है । एक सूफी सन्त की भीति इन्होंने अपना अन्तिम जीवन बख्श में व्यतीत किया । कहा जाता है कि ये एक बड़े व्यापारी थे । जब ये अपना धन लेकर जा रहे थे तो मार्ग में छद्मों ने इन्हें छुट लिया । इसके पश्चात् ये नीझापुर में बस गये । ये कवि भी थे और बहुत सी रचनायें भी की हैं । इनका देहान्त नीझापुर में सन् 871 ई० में हुआ था ।

### ॥ 20 ॥ अबू यणीद तैमूर इब्ने सुलैमन बिस्तामी -

इनकी साधारणतः बाय्यीद बिस्तामी के नाम से पुकारा जाता है । इनके पिता बिस्ताम के सम्मानीय-व्यक्तियों में से थे । धार्मिक शिक्षा पूर्ण करने के उपरान्त इन्होंने अनेक देशों का भ्रमण किया था । कहा जाता है कि इनकी मुलाकात एक सौ तेरह सूफी सन्तों से हुई थी और यह भ्रमण कार्य इन्होंने लगभग तीस वर्ष तक जारी रखा था । इसके पश्चात् इन्होंने अधिकांश समय बिस्तान में ही व्यतीत किया था और वहीं पर

इनका देहान्त सन् 874 ई० में हुआ था । स्नातन पीथ्यों के विरोध के कारण कुछ समय इन्होंने अज्ञातवास भी किया था । जुनेद बगदादी के अनुसार बायज़ीद की स्थिति सुफियों में कही है जो जिबराईल की फ़रिशतों में है । इन्होंने फ़ला का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था । निकल्सन तथा आर० सी० जैहिनर इसे उपनिषदों से लिया हुआ सिद्धान्त मानते हैं जब कि आरबैरी इनसे सहमत नहीं हैं ।

### §21§ अबू याकूब यूसुफ़ इब्ने अल हुसेन -

ये रे के सुफियों में से थे । इन्होंने अपनी शिक्षा अरब और मिस्र में प्राप्त की थी । तत्पश्चात् अपने निवास स्थान आ गये थे और वहीं लोगों को धार्मिक व्याख्यान देते थे । इनका देहान्त सन् 816 ई० में हुआ था । इनके व्याख्यानो का अधिक प्रभाव वहीं के लोगों पर नहीं पड़ा ।

### ईरान और दूसरे भागों के सुफी

### §22§ अबुल फ़वारिस शाह इब्ने शुजा किरमानी -

इनका सम्बन्ध राजवंश से था इन्होंने सुफीमत पर अनेक पुस्तकों की रचना की थी । ये अबू तुराब बख़्शी की संगीत में रहे थे । इनके मतानुसार प्रेच्छता ज़ही समय तक है जब तक मनुष्य अपने अन्दर से अहंकार को निकाले रहता है । आप इतनी तपस्या करते थे कि पचासीस वर्ष तक सोये नहीं थे । इसके पश्चात् जब आप सोये तो ईश्वर के दर्शन स्वप्न में लिये । इनका कहना था कि यदि किसी सुफी को यह ज्ञात हो जाये कि मैं कही { ईश्वर का मित्र } हूँ तो वह कही नहीं रहता ।



### ॥23॥ अबू अब्दुल्ला मुहम्मद इब्ने ख़लीफ़ इब्ने इस्फ़ाहान -

इनका जन्म सन् 882 ई० में हुआ था । अबुल फ़ारिस की भीति इनका सम्बन्ध भी राजपूष से था । इनकी लिखी पुस्तकों से पता चलता है कि ये इब्ने अता, शिबली हुसैन मन्सूर और जुरैरी की संगति में रहे थे । मका में याकूब नहर जुरी की संगति में रहे थे । ईश्वर के प्रेम में तल्लीन होने के कारण सज्जपाठ त्याग दिया था । इनके मतानुसार जब तक तीसारिक मोह से छुटकारा नहीं मिलेगा तब तक ईश्वर का ध्यान नहीं किया जा सकता । कहा जाता है कि इन्होंने अनेक विवाह किये थे । ये छः बार मका गये थे । गिरु व रीबिया माहनर का भ्रम्य करने के पश्चात् 982 ई० में इनका देहान्त श्रीराज में हो गया ।

### ॥24॥ अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद सहल इब्ने अब्दुल्ला अल तुस्तरी -

ये युजिस्तान में तुस्तर के रहने वाले थे । इनका जन्म सन् 815 ई० में हुआ था । इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा सुपियान जुरी से तथा बाद में जुनून मिन्नी से प्राप्त की थी । तना-... पीछियों के विरोध स्वरूप ये बतरा गये थे । सामाजिक, धार्मिक विद्वानों के मतानुसार ये शरि-अल और तरीकत दोनों की शिक्षा दिया करते थे । इनका कहना था कि अह को कट देकर उसे समाप्त करके सीधा ईश्वर से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है । सत्य से विधान को पृथक् नहीं किया जा सकता यदि सत्य वृक्ष है तो विधान उसकी शाखा । ईश्वर का ज्ञान सत्य है और उसकी आज्ञा का पालन विधान है । राबिया बतही की भीति सहल भी पशु पीछियों एवं जंगली हूँकार जानवरों से प्रेम करते थे । इनका देहान्त बतरा में सन् 896 ई० में हुआ था ।

### शाम और मिश्र के सुफी

॥ 25 ॥ अबुल फ़ैज सौबान इब्ने इब्राहीम अल मिश्री -

इनको जुन्नून मिश्री के नाम से पुकारा जाता है । ये मिश्र के इज़्मीम नगर के निवासी थे । इनका जन्म सन् 796 ई० के लगभग हुआ था । रसायन शास्त्र एवं औषधि शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये अरब और शाम यात्रा पर चले गये । सन् 829 ई० में उन्हें कैद करके बग़दाद की जेल में बन्द कर दिया था, इन पर नास्तिकता का दोष लगाया गया था । छानबीन के उपरान्त इनको रिहा कर दिया गया था । और ये फिर मिश्र वापस आ गये थे । जहाँ इनका देहान्त सन् 860 ई० में हो गया था । मारिफ़त के असली स्वस्थ की शिक्षा सर्वप्रथम इन्हीं ने दी थी । इनके मतानुसार जिसे ईश्वर चाहता है उसी को चाहना चाहिये । और जिसे ईश्वर नहीं चाहता उसे नहीं चाहना चाहिये । मानव मात्र से प्रेम ही सच्चा ईश्वरीय प्रेम है ।

॥ 26 ॥ अबु सेलेमान अब्दुरहमान बिन अतीय्या अल दारानी -

ये शाम के निवासी थे परन्तु कुछ समय बसरा में निवास करने के उपरान्त दमिश्क के निकट दाराया आ गये थे । यहीं पर इनका देहान्त सन् 830 ई० में हुआ था ये अधिक तपस्या किया करते थे । इनके मतानुसार जब मनुष्य की आज्ञा बढ़ जाती है तो समय में बिगाड़ आ जाता है । क्योंकि समय का आभास वर्तमान से होता है और मनुष्य उस समय तक अपने वर्तमान पर ही दृष्टि रखता है । जब तक उसका भ्रम हृदय पर छाया रहता है जब भ्रम समाप्त हो जाता है तो वह सुरक्षा भी नहीं करता और इस प्रकार उसके समय का बिगाड़ हो जाता है । अर्थात् मनुष्य को आज्ञा और भ्रम ईश्वर की प्राप्ति में दोनों ही अति आवश्यक हैं ।

## §27§ इब्राहीम बार दज्जदाद -

ये पूर्वी शाम के निवासी थे । ये सन् 720 ई० से 730 ई० के बीच जीवित थे । और बग़दाद के सूफ़ियों में इनकी गणना होती है । इनके बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है ।

### बग़दाद के सूफ़ी =====

## §28§ अबू महफ़ूज़ मारूफ़ इब्ने फ़ीरोज़ अल ज़ख़ी -

ये एक ईरानी थे जिन्होंने बग़दाद में इस्लामी रहस्यवाद की संस्था स्थापित की थी । यद्यपि इनके माता-पिता ईसाई थे, इन्होंने आठवें शिवा इमाम अली अल रज़ा के प्रभाव में आकर इस्लाम धर्म स्वीकार लिया था । मारूफ़ बग़दाद में रहने लगे थे और वहीं इनका देहान्त सन् 815 ई० में हुआ था । कुछ का विचार है कि मारूफ़ ने रहस्यवाद और सन्त जीवन की शिक्षा अबू सुलेमान दाउद, इब्ने नुतैर अल ताई क़ुफ़ी से प्राप्त की थी । हासन रशीद के शासन काल में मारूफ़ बग़दाद के निकट क़र्छ में रहने लगे थे । इसीलिये ज़ख़ी प्रसिद्ध हुये । इन्होंने सत्यता और विश्वास पर अधिक बल दिया । उनका कहना था कि न तो मैं कोई इच्छा ही रखता हूँ और न उसकी [ईश्वर] इच्छा - विरुद्ध रहता हूँ ।

## §29§ अबुल हसन सारी इब्ने अल मुग़ीत्सिस अल सक्ती -

ये मारूफ़ ज़ख़ी के शिष्य थे । और बग़दाद के सूफ़ियों में अपना विशेष स्थान रखते थे । 98 वर्ष की आयु में इनका देहान्त सन् 867 ई० में हुआ था । प्रारम्भ में मसाले आदि का व्यापार करते थे । बग़दाद के

ये प्रथम सूफी थे जिन्होंने रहस्यवाद के माध्यम से तौहीद [एकत्व] की शिक्षा दी थी। प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग करने वाले भी यही हैं। उनका सिद्धान्त बुद्धिवादी था।

### 130] अबू सईद अहमद इब्ने ईसा अल खुराजि बग़दादी -

खुराजि मोघी का काम करते थे लेकिन बड़े ही प्रतिभा सम्पन्न थे। इन्होंने अपनी पुस्तकों में फ़ना तथा बक़ा के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। बायज़ीद की अपेक्षा इन्होंने उत्साहित भाषा में फ़ना एवं बक़ा को विस्तार पूर्वक लिखा है। इनकी पुस्तक फ़ितावुल सिद्क का अंग्रेज़ी अनुवाद ए० जे० आरबेरी द्वारा हो चुका है। खुराजि ने रहस्यवादों के मार्गों एवं पड़ावों का वर्णन किया है। जैसे : - भय, आशा, प्रेम, लज्जा, सम्पर्क आदि हैं, जो ईश्वर से मिलन कराने में सहायक होते हैं। इनका देहान्त लगभग सन् 892 ई० में हुआ था।

### 131] अबू अब्दुल्ला अल हारिस इब्ने अतद अल मुहासिबी -

इनका जन्म बसरा में 781 ई० में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन काल में ही ये बग़दाद चले आये थे। इन्होंने हदीस और अन्य धार्मिक शिक्षा पूर्ण की। ये शास्त्रार्थ में बड़े निपुण थे इन्होंने अपनी वाक्यदृढ़ता का प्रयोग मुतज़िला और शिया सम्प्रदाय के विरुद्ध किया था। इनका देहान्त 857 ई० में हुआ था। यद्यपि मुहासिबी के मत पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। फिर भी आगे आने वाले सूफ़ियों ने इनके मत का अनुसरण किया। इमाम ग़ज़ाली ने इनके मत से सहमति की थी मुहासिबी ने आत्म परीक्षा पर अधिक बल दिया।

### ॥32॥ अबुल कासिम अल जुनेद इब्ने मुहम्मद अल खुरीज अल निहा बन्दी-

ये मुहासिबी के निज्ज के मिलो में से थे । ये मुहासिबी के शिष्य भी थे । ये सारी के भतीजे थे । जुनेद के पिता एक शीशे के व्यापारी थे इन्होंने फिक्ह और हदीस में शिक्षा पूर्ण कर ली तो ये मुहासिबी के पास चले गये और उनके शिष्य हो गये । इनके घघा सारी ने इनको सलाह दी थी कि पहले तुम हदीस और सुन्नत में निपुण होना तत्पश्चात् रहस्यवाद की ओर ध्यान देना । अन्यथा सफलता सम्भव नहीं है । जुनेद का देहान्त 910 ई० में हुआ था । सहब् के सिद्धान्त में सुफी इनको अपना मुखिया मानते हैं । कुछ इनको सुफीमत में पथ प्रदर्शकों का पथ प्रदर्शक मानते हैं ।

### ॥33॥ अबुल मुगीस अल हुसेन बिन मन्सूर अल हल्लाज -

इनका जन्म फर्स के तूर स्थान में 857 ई० में हुआ था । हल्लाज ने अपनी शिक्षा वासित और बतरा में पूर्ण की । इसके पश्चात् ये जुनेद के सम्पर्क में आये और फिर हज करने मक्का चले गये । हज से वापसी के पश्चात् हल्लाज फौजी पस्त्र धारण करके लोगों को अपने विचारों से अवगत कराते हुये पूरे खुरासान में घूमे । दूसरे हज के उपरान्त इन्होंने भारत और तुर्किस्तान की यात्रा की थी । वहाँ से लौटकर 903 ई० में फिर से मक्का हज करने चले गये । तत्पश्चात् बगदाद में रहने लगे । यहीं पर इन्होंने अनल हक में ब्रह्म ईश्वर की आवाज लगाई । सनातनी मुसलमानों के विरोध के कारण इन्हें 913 ई० में कैद करके जेल में डाल दिया गया । 922 ई० की पहली अप्रैल को इन्हें फाँसी की सज़ा दे दी गई । हल्लाज के शब्दों में प्रेम ही ईश्वर का सच्चा स्वस्व है ।

### ॥34॥ अबू मुहंमद दुलाफ़ बिन जहदार अल शिबली -

इनके पिता गुरासान के मूल निवासी थे । परन्तु उनका जन्म बगदाद में हुआ था । ये दमावन्द के गर्वनर रह चुके थे । आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् शिबली ने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया और जुनेद के शिष्य हो गये । जब मनुष्य के हृदय में ईश्वर का प्रेम जागता है तो उसमें संसार से विरक्ति उत्पन्न हो जाती है । ऐसा विचार शिबली ने प्रस्तुत किया । इनका देहान्त 87 वर्ष की आयु में 946 ई0 में हुआ था । इनके मतानुसार सच्चा प्रेम ही सब कुछ है । स्वर्ग और नरक के लालच तथा भय से प्रेम स्वार्थमय होता है ।

शिबली के समय तक सूफीमत परिपक्व हो चुका था ।

### सूफी-जगत के विभिन्न सम्प्रदाय

समस्त सूफियों के लक्ष्य में उद्योग कोई भेद नहीं है, फिर भी देशान्तर, सामाजिक विषमता एवं पारिवेशिक भिन्नता के आधार पर वैचारिक भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है । परिणाम स्वरूप सूफी-जगत में जितने भी महान सूफी हुए, कालान्तर में उनके अनुयायियों ने या तो सूफी विशेष के नाम पर अथवा सिद्धान्त विशेष के आधार पर अपने-अपने सम्प्रदायों का नामकरण कर लिया था । सूफी-जगत में जिन सूफी-सम्प्रदायों का जन्म हुआ, उनमें से कुछ विशेष सम्प्रदायों के विवरण "क़सफ़ुल महज़ूब" के

---

1- "क़सफ़ुल महज़ूब" अली हुणवेरी [उर्दू अनुवाद मक़तब-ए-धानवी, देवबंद]  
पृष्ठ 218 - 321

लेखक अली हुज्जैरी ने अपनी पुस्तक में दिये हैं । उन सम्प्रदायों के नाम तथा उनसे सम्बन्धित प्रमुख सूफी का नाम ही देना उचित समझा है, क्योंकि हमारा लक्ष्य केवल इन सम्प्रदायों का बताना भर है । ये सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं : -

सम्प्रदाय का नाम	सम्प्रदाय के प्रधान, पीर, मुशिद अथवा शेख का नाम
1- मुहासिबिया सम्प्रदाय	श्री अबू अब्दुल्ला हारिस बिन असद मुहासिबी ।
2- कुस्तारिया सम्प्रदाय	श्री अबू स्वालेह बिन हमदून बिन अहमद बिन अमारा अल कुस्तार ।
3- तैफूरिया सम्प्रदाय	श्री अबू यज़ीद तैफूर बिन ईसा बिन सरद-शान बिस्तामी ।
4- जुनेदिया सम्प्रदाय	श्री अबुल कासिम जुनेद बिन मुहम्मद ।
5- नूरी सम्प्रदाय	श्री अबुल हसन अहमद बिन नूरी ।
6- सुहेलिया सम्प्रदाय	श्री सुहेल बिन अब्दुल्ला तुस्तरी ।
7- हकीमिया सम्प्रदाय	श्री अबू अब्दुल्ला बिन अली हकीम तिरमिज़ी ।
8- खुराफिया सम्प्रदाय	श्री अबू सईद खुराज़ ।
9- ख़फ़ीफ़िया सम्प्रदाय	श्री अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन ख़फ़ीफ़ ख़ीराज़ी ।
10- तैयारिया सम्प्रदाय	श्री अबुल अब्बास तैयारी ।
11- हल्लानिया सम्प्रदाय ।	श्री अबू हल्लमान दीमशकी तथा हल्लान का शिष्य फ़ारिस ।

1- इस सम्प्रदाय के दो उप सम्प्रदाय हो गये थे । एक के प्रधान अबू हल्लमान दीमशकी थे तथा दूसरे के प्रधान हल्लान के शिष्य फ़ारिस थे । परन्तु इनको सूफी-जगत में मान्यता नहीं मिली ।

उपर्युक्त सम्प्रदायों की अपेक्षा अन्य सम्प्रदायों का भी जन्म हुआ था, परन्तु विशेष रूप से इन्हीं की पर्चा की जाती है। इन्हीं सम्प्रदायों के आगे चलकर अनेक उपसम्प्रदाय बन गये जो सिलसिले के नाम से भी जाने गये और इन सिलसिलों का नाम करण भी इनके मुख्य आध्यात्मिक गुरु के नाम पर ही हुआ। भारत वर्ष में भी संसार के अन्य देशों की भाँति अनेक सिलसिलों ने जन्म लिया था, परन्तु मुख्य रूप से केवल चार सिलसिले ही हैं जिन्होंने भारतवर्ष में अपना प्रभाव स्थापित करके अपने विचारों के माध्यम से स्लाम धर्म का प्रचार एवं प्रसार बड़ी ही सुन्दरता के साथ किया है। परिणाम स्वरूप भारतवर्ष के अधिकांश मुसलमान इन्हीं सूफ़ी सन्तों के प्रभाव एवं स्लाम के आकर्षक विविध विधानों के कारण हिन्दू धर्म त्याग कर मुसलमान बन गये। भारतीयों के मानस-पटल पर अमिट छाप छोड़ने वाले तथा उनको स्लामी माला में पिरोकर सुन-बद्ध करने वाले सम्प्रदायों में पिशती सुहरवर्दी, कादिरि तथा नक़्शबन्दी सम्प्रदाय प्रमुख हैं। इन्होंने तो केवल "बसुधैव कुटुम्बकम्" की नीति का ही पालन किया था जो हिन्दू समाज में व्यवहार रूप में नहीं थी। यही कारण था कि अनेक हिन्दू उत्साह के साथ मुसलमान होने लगे थे और इन सिलसिलों के प्रवर्तक बराबर इनको प्रोत्साहन दे रहे थे। चारों सिलसिलों के नाम, उनके प्रवर्तकों के साथ निम्नलिखित हैं :-

सिलसिला	प्रवर्तक
1- पिशती सिलसिला	भारतवर्ष में इसके प्रवर्तक ख़्वाजा मुईनुद्दीन पिशती है।
2- सुहरवर्दी सिलसिला	भारतवर्ष में इसके प्रवर्तक शेख़ बहाउद्दीन ज़क़ीरिया हैं।
3- कादिरि सिलसिला	भारतवर्ष में इसके प्रवर्तक शेख़ मुहम्मद ग़ौस हैं। ये अब्दुल कादिर ज़ीलानी के वंशज थे।
4- नक़्शबन्दी सिलसिला	भारतवर्ष में इसके प्रवर्तक ख़्वाजा बाक़ी-बिल्लाह बेरंग हैं।



इन सम्प्रदायों के नाम से ही ज्ञात होता है कि इनमें परस्पर वैचारिक भिन्नता है। यह भिन्नता इनको भिन्न दिखाती अवश्य है, परन्तु इनके लक्ष्य में कोई भिन्नता नहीं है। प्रकारान्तक से सभी सूफियों का एक ही लक्ष्य है - शरा [स्लामी विधान] के अनुसार जीवन यापन करके परम सत्य का सानिध्य प्राप्त करना। जीवन-यापन के नियमों का भी वे पैगम्बर मुहम्मद में ढोंकते हैं, क्योंकि सूफीमत के अनुयायी अपने मत का केन्द्र बिन्दु पैगम्बर मुहम्मद साहब को ही सिद्ध करते हैं। यह दूसरी बात है कि सूफी शब्द का प्रचलन पहली शताब्दी हिजरी से पूर्व नहीं हो पाया था जिसका कारण पिछले अध्याय में बताया जा चुका है। इस सम्बन्ध में इमाम बुखारी का मत है कि सूफी शब्द दूसरी शताब्दी हिजरी से पूर्व ही बोला जाने लगा था<sup>1</sup>। इब्ने जूज़ी ने अपनी पुस्तक "सफ़वा-अल-सफ़वा" में हुजवेरी ने अपनी पुस्तक "कुसफ़ूल हज्जब" में नूरीद्दीन अब्दुर्रहमान जामी ने अपनी पुस्तक "नुफ़हातुल उन्स" में और इसके साथ ही "शहरातुल ज़हब" तथा क़सफ़ूल जुनून के लेखकों ने भी अपनी सहमति इस बात पर प्रकट की है कि सूफी शब्द का प्रयोग पहली शताब्दी हिजरी के पश्चात् प्रचलन में आ गया था। इनकी सहमति में सर्वप्रथम सूफी श्रेष्ठ अबू हाशिम जूफी मृत्यु 161 ई० ही हैं जो सूफी नाम से सम्बोधित किये जाते हैं।

अरबी भाषा में सूफीमत पर लिखी गयी सर्वप्रथम पुस्तक "कुतुल-कुलूब" लेखक श्रेष्ठ अबू तालिब मक्की ने श्रेष्ठ हसन बसरी [जन्म 642 ई० तथा मृत्यु 728 ई०] को सूफ़िया का इमाम लिखा है। परन्तु सूफी कहकर पुकारे जान वाले सर्वप्रथम व्यक्ति अबू हाशिम जूफी ही हैं। इसके पश्चात् आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने वाले लोगों संख्या निरन्तर बढ़ती ही गयी जिसके परिणाम स्वल्प वैचारिक भिन्नता आना अवश्य भावी था।

मुहम्मद साहब के पश्चात् प्रथम दो शताब्दियों में सूफियों में वीही मुरीदी का सिलसिला परिपक्व हो चुका था । परिणाम स्वल्प तिरमिज में अलहकीम, मर्ब में अबुल अब्बास सैयार, नीजापुर में कस्तार, बिस्तान में बायजीद, शीराज में ख़फीज़, तुस्तर में सहल, ख़राज़ में मुहासिबी, बग़दाद में जुनैद और नूरी के अनुयायी आ-जाकर एकत्रित होने लगे थे । और इस प्रकार से विभिन्न सूफ़ी सम्प्रदाय अस्तित्व में आ गये ।<sup>1</sup> प्रत्येक सूफ़ी सम्प्रदाय [सिलसिला] में उसके अनुयायी अपने आध्यात्मिक गुरु [येस, पीरा, ग़रिब] के बताये निष्मानुसार रहस्यवाद के अभ्यास में संलग्न होकर जीवन यापन करने लगे । उन सभी के णिज़ और धिन्तन में भी विभिन्नता थी । परन्तु वैचारिक धिन्नता के होते हुये भी उन्होंने अपने आपको शरा [स्तामी विधान] से अलग नहीं किया ।

### सम्प्रदाय(सिलसिला)-

बारहवीं शताब्दी तक आते-आते जो नये-नये सम्प्रदाय अस्तित्व में आये थे, परिपक्व होकर सामने आ गये । अब उनके अलग-अलग कारनामों से उनको पहचाना जाने लगा । इन सभी सम्प्रदायों में वैचारिक एवं धिन्तन की भिन्नता होते हुये भी इन्होंने अपने को एक सूत्र में बाँध रखा था । वह सूत्र था पैगम्बर मुहम्मद से हज़रत अली के माध्यम से सम्बन्ध स्थापित करना । यद्यपि इन सम्प्रदायों का माध्यम चारों ही ख़लीफ़ा थे, परन्तु अधिकांश में हज़रत अली और हज़रत अबू बकर को ही अधिक श्रेय दिया तथा इनमें से अधिक प्रधानता हज़रत अली को ही दी । भारतवर्ष के चार सिलसिलों में नज़्मबीदिया को छोड़कर जो हज़रत अबूबक़्क़ से अपना संबंध स्थापित करता है, शेष तीनों यिश्ती, जुहरवर्दी और कादिरि सिलसिले वाले अपना आध्या-

रिश्तक गुरु हजरत अली को ही मानते हैं । इन सभी का चिन्तन आधार प्रकारान्तर से कुरान और उस में वर्णित अल्लाह के अनेक नाम ही थे । साथ ही इन्होंने पैगम्बर मुहम्मद साहब की हदीसों [प्रचलन] को भी चिन्तन का विषय आधार बनाया । इन्होंने नव अपलातुनी मत, बौद्ध-मत, ईसाईमत तथा वेदान्ती और योगिक रहस्यवाद का इस्लामी करण करके उन्हें ऐसा रूप दे दिया जो वास्तव में पहचाने न जा सकें । परम सत्य अध्या अल्लाह से एकाकार होने के लिये इन्होंने ऐसे तीस विधानों की रचना की जिनका पालन आगे आने वाले अनुयायियों ने बड़ी दृढ़ता से किया । मुख्य रूप से प्रधान सम्प्रदाय बग़दाद, ईरान, तुर्कस्तान और द्वासीस्ताना में स्थापित हुये ।

#### कादरिया सिलसिला [सम्प्रदाय] -

इसके प्रवर्तक शेख अब्दुल कादिर जीलानी थे । इनका जन्म 1077 ई० में कैस्पियन सागर के दक्षिण में जीलान नामक नगर में हुआ था । यद्यपि इन्होंने अपना ख़िराज अल मुख़र्रमी से प्राप्त किया था, परन्तु तसब्बुफ के बीच इनमें अबुल ऐर हम्माद अल दब्बास [मृत्यु 1129] ने बोये थे । सन् 1127 ई० से पूर्व इन्होंने 25 साल तक एक भ्रमणशील जीवन व्यतीत किया था । फिर वे अपने गुरु के स्थान पर बग़दाद में शिक्षा दीक्षा का कार्य सम्पन्न करते रहे । 51 वर्ष की आयु में आपने विवाह किया । शेख जीवन आपने बग़दाद और जिल में व्यतीत किया । इनका देहान्त 1166 ई० में हुआ । इस सम्प्रदाय के लोग भारत में भी पाये जाते हैं ।

#### सुहरवर्दिया सिलसिला [सम्प्रदाय] -

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक शेख अब्दुल नजीब के भतीजे शेख शिहा-बुद्दीन अबु हफ़्स अल सुहरवर्दी थे । इसके मत के लोग लगभग पूरे स्लामी

जगत में फैल गये, तथा भारत के सूफी सम्प्रदायों में इसका प्रमुख स्थान हो गया । इनका जन्म जनवरी 1145 ई० में हुआ था । शेख अब्दुल कादिर जीलानी से इन्होंने धार्मिक शिक्षा ग्रहण की थी । साथ ही अन्य प्रमुख धार्मिक गुस्त्रों का सत्संग प्राप्त किया था, परन्तु रहस्यवाद की शिक्षा अपने चचा शेख अब्दुल नजीब से प्राप्त की थी । इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की, जिनमें अवारिफुलमाआरिफ अधिक प्रशंसनीय एवं प्रमुख स्थान रखती है । इनकी मृत्यु सन् 1234 ई० में हुई थी । मृत्यु से पूर्व इन्होंने अपने समय के प्रमुख सूफियों से ईरान, खुरासान, द्रोस्त-किस्थाना, सीरिया तथा तुर्की में जा-जाकर सत्संग-लाभ प्राप्त किया था ।

शेख शिहाबुद्दीन की ही टक्कर के महान सूफी अब्दुल जन्नाब अहमद बिन अमर अल खिवाफी जी नज्मुद्दीन कुबरा के नाम प्रसिद्ध हैं, ये । उनके शिष्यों में अनेक महान सूफी हुये हैं । उनके मतानुयायियों ने अनेक सम्प्रदायों को जन्म दिया । उदाहरणार्थ बगदाद, खुरासान और भारत में कुबरीया सम्प्रदाय के लोग फैल गये थे । भारत में इसके उपसम्प्रदाय फिद्दीरिया तथा हमदानिया हैं । बगदाद की शाखा नूरिया सम्प्रदाय के नाम से जानी जाती है । खुरासान में रुकनिया, इगित्ताशिया, तथा नूर बख्शिया प्रमुख हैं । यही कारण है कि शेख अब्दुल जन्नाब अहमद नज्मुद्दीन कुबरा को साधारणतया तथा शेख-ए-बली तराफ सन्तों की रचना करने वाले कहा जाता है ।

शेख नज्मुद्दीन कुबरा का जन्म 1145 में ख्वाजर्म में हुआ था । युवावस्था में ही ह्मादान जाकर हदीस की शिक्षा ग्रहण की थी । तत्पश्चात् वे तबरेज और सिकन्दरिया भी इसी उद्देश्य से गये थे । यहीं से इनका स्थान रहस्यवाद की ओर गया जिससे वे सूफीमत की ओर अग्रसर

होकर ख़ुज़िस्तान चले गये और वहीं शेख़ इस्माईल क़सरी [1193] के शिष्य हो गये। बाद में ये शेख़ अम्मार इब्ने यासिर अल बिदलिसी [मृ० 1200] के शिष्य हो गये जो कि अब्दुल नज़ीब सुहरवर्दी के मित्र थे। इसके पश्चात् नण्मुद्दीन कुबरा ने काहिरा मैसूर काज़िज़्ज़न के शेख़ रज़ीबिहान अल बण्णान [मृत्यु 1188] से रहस्यवाद की शिक्षा पूर्ण की तथा वहीं रज़ीबिहान की पुत्री से विवाह कर लिया था। अन्त में आपने छ्वाज़िरण्म में जीवन व्यतीत किया। इनके शिष्यों में महान सुफ़ी मण्बुद्दीन बग़दादी [1209-1219] फ़रीबुद्दीन अन्तार के गुरु सादुद्दीन हमावी [1253], सुफ़ी मत पर अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना करने वाले नण्मुद्दीन दाया [1256] थे। इन में प्रधान स्थान रखे वाले सेफ़ुद्दीन बख़रज़ी थे। उनकी मृत्यु मंगोल आक्रमणकारियों ने छ्वाज़िरण्म में 1221 ई० में कर दी। इन आक्रमण कारियों से शेख़ जिहाद [धर्म युद्ध] करते हुये शहीद हो गये। कहा जाता है कि शहीद होते समय उनके हाथ में एक आक्रमणकारी के सिर के बाल थे जो ग्रयत्न करने पर भी नहीं छुड़ाये जा सके। अन्त में उनको काटकर पीछा छुड़ाना पड़ा। उन्होंने अरबी, फ़ारसी में सुफ़ी मत की अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की थी।

#### नवशब्दीन्दिया तिलीसला सम्प्रदाय -

एक विशेष सम्प्रदाय "छ्वाज़गान" जिसके पूर्वस्तक छ्वाज़ा अबू याक़ूब यूसुफ़ अहमदानी [1140] थे, द्रोस्तोविस्थाना के पश्चात् भारत में अस्तित्व में आया था। भारत में इसका नया नाम नवशब्दीन्दिया पड़ा। छ्वाज़ा की प्रारम्भिक शिक्षा बग़दाद में हुयी थी। तत्पश्चात् हिरात तथा मर्व में आकर रहने लगे थे। इनकी मृत्यु मर्व में हुयी। इनके चार प्रमुख शिष्यों में छ्वाज़ा अब्दुल ख़ालिक् बिन अब्दुल ज़मीन थे जो कि गुन्दबान [बलख़ के निकट एक गाँव] से आये थे। इन्होंने "छ्वाज़गान सम्प्रदाय" को नये सिरे से पिकीसत किया था। छ्वाज़ा अब्दुल ख़ालिक् गुन्दबानी के

पार छलीफा थे, जो सभी बुखारी थे । इनमें एक आरिफ रिउगारी  
 ॥1259॥ था, जिसका सम्बन्ध मुहम्मद बिन मुहम्मद बहाउद्दीन नक्श-  
 बन्द से इस प्रकार था -

आरिफ रिउगारी ॥मृत्यु 1259॥  
 मुहम्मद अनीजर फानवी ॥मृत्यु 1271॥  
 अमीन अली अर रमतिनी ॥मृत्यु 1321॥  
 मुहम्मद बाबा अस-समासी ॥मृत्यु 1354॥  
 सैयद अमीर कुलाल अल बुखारी ॥मृत्यु 1371॥  
 उवाजा बहाउद्दीन नक्शबन्द ॥मृत्यु मार्च 1389॥

उवाजा बहाउद्दीन का जन्म मार्च 1318 ई० में हुआ था उवाजा बहाउद्दीन  
 ने सैयद कुलाल से कहा था कि मैं आध्यात्मिक शिक्षा उवाजा अब्दुल गालिक  
 गुल्दधानी से प्राप्त की है । उवाजा बहाउद्दीन की मृत्यु के उपरान्त  
 इनके शिष्यों ने इनकी विचार धारा को दोसौधाना और भारत में प्रचा-  
 रित किया । यही उवाजगान सम्प्रदाय आगे चलकर नक्शबन्दी सम्प्रदाय के  
 नाम से प्रसिद्ध हो गया ।

### चिश्तिया सिलसिला ॥सम्प्रदाय॥ -

यह सिलसिला वास्तव में भारत में आकर फलीभूत हुआ यद्यपि  
 चिश्तनामी शहर में अनेक सिलसिलों का जन्म हुआ था । परन्तु ये अधिक  
 समय तक अस्तित्व स्थिर न सके । चिश्त नगर हिरात से सैकड़ों किलो-  
 मीटर के फारसे पर हरी खद नामक नदी के किनारे अफगानिस्तान में स्थित  
 है। अनेक राजनैतिक उथल पुथल के कारण अफगानिस्तान में हिरात, चिश्त  
 और जाम सुफियों के प्रमुख केन्द्र बन गये थे । सत्य तो यह है कि नौवीं  
 शताब्दी के अन्त तक इस्लामी जगत में सुफियों के यही प्रमुख केन्द्र थे ।  
 इन केन्द्रों के प्रधान सुफी इसी ढाँड़ में लगे रहते थे कि उनके केन्द्र को प्रमुखता

प्रदान की जाये अथवा उनके अधिक से अधिक अनुयायी एकत्रित हो सकें ।

वे सूफी जो दूसरे स्थानों से विप्रत में आकर बस गये थे, उनमें शेख अबू इस्तहाक शामी भी थे जो शाम से आकर विप्रत में बस गये थे । शेख ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति की प्रथम कड़ी हजरत अली और पैगम्बर मुहम्मद साहब को बताते हुए हसन बसरी से अपने आप को श्रद्धा बढ़ा दिया -

मुहम्मद | पैगम्बर |  
 अली - | चतुर्थ खलीफा |  
 हसन बसरी |  
 अब्दुल वाहिद बिन जैद |  
 फ़ौज़ बिन अयाज़ |  
 इब्नाहीम अथम बलखी |  
 ख़वाजा सादिदुद्दीन हुज़ैफ़ा अल मरअशी |  
 अबू हुबैरा बसरी |  
 ख़वाजा मुमशाद अलवी दीनोरी |  
 अबू इस्तहाक शामी ।

कुछ समय के पश्चात् अबू इस्तहाक शाम वापस चले गये थे और 940 ई० में बख़्सा में उनका देहान्त हो गया । इनके पश्चात् इनके जानजीन [उत्तराधिकारी] शेख अबू अहमद अब्दाल विप्रती हुये । शेख अबू अहमद अब्दाल विप्रती विप्रत के निवासी थे । इनका देहान्त 965 ई० में हुआ और इनके पश्चात् इनकी गद्दी पर इन्हीं का पुत्र आसीम हुआ अबू मुहम्मद । इन्होंने अपनी बहन

के पुत्र ख्वाजा यूसुफ को अपना उत्तराधिकारी चुना । ख्वाजा यूसुफ ने अपने मित्र हिरात निवासी ख्वाजा अब्दुला अन्तारी को अपना उत्तराधिकारी चुना । ख्वाजा अब्दुला अन्तारी का देहान्त 1066 ई० में हुआ और उनका पुत्र ख्वाजा मौदूद विषती उनकी गद्दी पर आसीन हुआ । मौदूद विषती ने बख्त और बुखारा की यात्रा करके लगभग चार वर्षों में रहस्यवाद के मैदों का भली-भाँति अध्ययन किया । ख्वाजा मौदूद का देहान्त 1181 ई० में हुआ था । इन्होंने अपने जीवन काल में ही अपने पुत्र ख्वाजा अहमद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था । ख्वाजा मौदूद के शिष्यों में एक मुहम्मद नामी शिष्य भी थे । जो ख्वाफ़ के सन्जान नामक गाँव से आये थे । दूसरे ख्वाजा हाजी इरीफ भी प्रमुख शिष्यों में से थे । जो सन्जान से आये थे । इन्हीं हाजी इरीफ ने अपना उत्तराधिकारी ख्वाजा उस्मान हारवानी को चुना जो नीजापुर के निज्ज हसन नामक स्थान से आये थे<sup>1</sup> ।

ख्वाजा मौदूद के शिष्यों में से कुछ जहाँ बाहर चले गये और कुछ ने घूम फिर कर दरवेशी जीवन व्यतीत किया । ऐसे दरवेशों में ख्वाजा उस्मान हारवानी भी थे । ख्वाजा उस्मान हारवानी में अपना उत्तराधिकारी ख्वाजा मुईनुद्दीन विषती को चुना । कहा जाता है कि ख्वाजा मुईनुद्दीन विषती ने अपने गुरु की सेवा, बिना एक क्षण के पछिमाय की लगभग बीस वर्ष की थी । इनके गुरु ने प्रसन्न होकर इन्हें आशीर्वाद दिया और<sup>2</sup> दैवी ज्ञान प्रदान किया । अपने गुरु का आशीर्वाद लेकर ख्वाजा मुईनुद्दीन विषती अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए और अनेक सूफियों से आध्यात्मिक लाभ उठाते हुए भारतवर्ष के प्रमुख नगर अजमेर आये । यह वह समय था जब

1- "ए हिस्ट्री ऑफ सूफीज़म इन इण्डिया" पृष्ठ 115 भाग प्रथम  
अख्तर अब्बास रिजवी ।



अजमेर पर पिथौरा राय [पृथ्वी राज चौहान] का राज्य था । पृथ्वी राज चौहान की राजधानी भी अजमेर नगर थी । छ्वाजा के आने के पश्चात् सुल्तान मुईनुद्दीन मुहम्मद [मुहम्मद गौरी] ने अजमेर पर आक्रमण किया । तथा पिथौरा राय को जीवित पकड़ कर मार डाला था ।

अजमेर में रहकर छ्वाजा मुईनुद्दीन पिथौरा ने लोगों को परस्पर प्रेम पूर्वक रहने और सभी को समान महत्त्व देने की महत्त्वपूर्ण बातें बताते हुये इस्लाम का सन्देश देना प्रारम्भ कर दिया । शीघ्र ही पूरे देश से लोग इनके निकट एकत्रित होने लगे । इस प्रकार यह सिलसिला भारत में अधिक प्रसिद्ध हुआ ।

**भारतवर्ष में विविधता सिलसिले [विविधता-सम्प्रदाय] का प्रारम्भ**

भारतवर्ष के इस्लामी इतिहास में बारहवीं शताब्दी ई० [छठी शताब्दी हिजरी] अति महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । यही वह शताब्दी है जिसमें इस्लामी जगत के इतिहास में एक नया मोड़ आया था । यही वह शताब्दी है जिसमें तैयार में पैले हुए इस्लामी साम्राज्य में एक ऐसे महान देश को विजित करके सम्मिलित किया जा रहा था जो प्रकृति के अपार बहुमूल्य खजानों से भरपूर तथा मानवीय गुणों से मालामाल था और जिसके भाग्य यह लिख चुका था कि निकट भविष्य में यह स्लामी प्रचार व प्रसार का विषय व्यापी केन्द्र एवं स्लामी शिक्षा का विषयस्त स्रोत बननेगा । वह था हिन्दुस्तान ।

बारहवीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ में गुर्जर एवं तातारियों के बर्बरतापूर्ण आक्रमणों ने इस्लामी जगत में अज्ञानित उत्पन्न कर दी थी ।

इस अज्ञानि का परिणाम यह निकला कि लोगों की मान मर्यादा ठाक में खिल गयी । इन आक्रमणों का भयंकर प्रभाव विशेष रूप से बल्लू बुझारा समरकन्द, रे, हमदान, पुन्धान, कजवीन, मर्व, नीशापुर तथा खवारिज्म पर पड़ा और यही तक कि बग़दाद [इस्लामी साम्राज्य की राजधानी] भी इसकी लपेट में आ गया । जिस समय इस्लामी जगत पर ये काले बादल छाये हुए थे उस समय केवल भारत ही ऐसा था जहाँ अज्ञानि एवं सुव्यवस्था की चर्चा हो रही थी । इसका मुख्य कारण यही के तुर्क शासकों की वीरता, अदम्य साहस एवं धर्मपरायणता के साथ-साथ न्याय प्रियता थी । अपने शौर्य का प्रदर्शन ये चंगिज़ी एवं मंगोल आक्रमणकारीयों के समक्ष युद्ध भूमि में अनेक बार कर चुके थे । अकेले अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में ही चंगिज़ी मुगलों को पाँच बार पराजय का मुँह देना पड़ा था । अतः जो अज्ञानि एवं अराजकता इस्लामी जगत के अन्य देशों में व्याप्त थी, उससे भारतवर्ष पूर्ण रूप से सुरक्षित था ।

इन भारतीय विशेषताओं के आधार पर इस्लामी जगत के अन्य संवत् ग्रस्त देशों से बुद्धि जीवी वर्ग<sup>उप</sup> व्यक्तियों का भारत आगमन प्रारम्भ हो गया था । भारतवर्ष आने वाले लोगों में से अधिकांश व्यक्ति ईरान, ईराक और तुर्किस्तान के निवासी थे । यद्यपि ये लोग प्रारम्भ में तो दिल्ली में आकर बसे थे, परन्तु कालान्तर में ये देश के अन्य नगरों एवं कस्बों में भी जाकर रहने लगे । इन नवागन्तुक व्यक्तियों में बड़े-बड़े उच्च कोटि के विद्वान मनीषी, विन्तक शिक्षक, चिकित्सक, कलाकार, सूफी एवं दाश्तीनक भी थे जिन्होंने अपने पैत्रिक देश में सम्बन्धित उत्तरदायित्व का बोझ अपने कंधों पर उठा रखा था । इनकी कार्य-कुशलता को देखकर भारतवर्ष में झोंपड़ी से लेकर

---

1- " आदि तुर्क कालीन भारत " - सैयद अहमद अब्बास रिज़वी ।

महलों तक, अनपदों से लेकर विद्वानों तक, कमीनों से लेकर कुलीनों तक, सभी वर्गों में इनकी प्रतीकृत समान स्वरूप से स्थापित हो गई। इन गणमान्य व्यक्तियों में सूफियों का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक था। सूफी लोग, भारतीय जन-मानस में जागरूकता का मन्त्र फैक रहे थे। यों तो इस्लाम धर्म के आरम्भ के साथ ही सूफियों का भारत में आना जाना प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूफी सन्त पहली शताब्दी हिजरी में भारत वर्ष में आने प्रारम्भ हो गये थे<sup>1</sup>। इन्होंने सर्वप्रथम सिन्ध से लेकर मुल्तान तक के भूक्षेत्र को अपने प्रेम का व्यवहार तथा मर्म स्पर्शी विचारों से ओत प्रोत कर दिया था। इस प्रकार से तुर्की-बासन काल में भारतवर्ष आने वाले सूफी सन्त भारतीय जनता के लिये कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं थे। अतः इन नवागन्तुक सूफियों की ओर जन-समुदाय का आकर्षण नित्य बढ़ता ही गया। परिणाम स्वरूप इस जन-समुदाय को उठने बैठने के लिये उचित एवं विज्ञान आधारित की आवश्यकता पड़ी और इसी आवश्यकता को दृष्टि में रखकर बड़े-बड़े भवनों का निर्माण अस्तित्व में आया। इन भवनों में पानी की समुचित व्यवस्था बड़ी-बड़ी बाकली बनवाकर की गई। इन्हीं भवनों को खानकाह कहते हैं। इन खानकाहों ने सामूहिक शिक्षा-दीक्षा में बड़ा योगदान दिया। नैतिक शिक्षा, सदाचार एवं शिक्षाचार की शिक्षा इस्लामी विधान के अन्तर्गत दी जाती थी। यदि हम यह कहें कि इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार के अद्भुत ये खानकाहें ही थीं तो अतिशयोक्ति न होगी। इस्लाम धर्म के प्रचार में तत्कालीन शासन का कोई तीथा सम्बन्ध नहीं था। इतना अवश्य था कि इन सूफियों को और इनकी खानकाहों को शासन की ओर से संरक्षण अवश्य प्राप्त था। इस धार्मिक कार्य में शासन की ओर से किसी प्रकार की बाधा खड़ी नहीं

---

1- मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के समय सन् 61 हिजरी में।

की जाती थी, यद्यपि कभी इन छानछाहों के प्रधान सूफी से शासक वर्ग नाराज़ अवश्य हो जाता था, जो व्यक्तिगत आधार पर ही था ।

भारतवर्ष में सूफियों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा पित्त व्यवस्थित ढंग से दी जाने चाहिये थी, यह छुवाजा मुईनुद्दीन हसन तिस्रिणी चिश्ती के भारत-आगमन से पूर्व सम्भव न हो सकी थी । यदि यह ज्ञात जाय कि अधिकांश भारतीय मुसलमान छुवाजा मुईनुद्दीन द्वारा दी गयी शिक्षा का परिणाम है, तो यह भी अतिशयोक्ति नहीं होगी । छुवाजा मुईनुद्दीन चिश्ती आछाबुद्दीन मुहम्मद गौरी के आग्रह के सम्य [सन् 1192 ई०] में भारतवर्ष आ चुके थे । छुवाजा के आने से पूर्व अनेक सम्प्रदाय के सूफी [बौदिरानी, नज़्मदी, सुहरवर्दी और चिश्ती आदि] भारत में आकर वा तो स्थायी रूप से बस गये थे अथवा कुछ दिना, वापस चले गये थे । इन सभी ने अपने-अपने मतानुसार जनसमुदाय को नैतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षायें दी थीं, परन्तु भारतीयों पर आध्यात्मिक विषय प्राप्त करने का श्रेय केवल छुवाजा मुईनुद्दीन चिश्ती को ही अधिक है । छुवाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने अणमैर नगर में रहकर भारतवासियों के हृदय में प्रेम की जो चिन्तारानी फूँकी वही कालान्तर में झोला बन गयी । ऐसा करने में अधिक समय इस्तिलाफ नहीं लगा, क्योंकि भारत के अनेक सम्प्रदायों [बौद्ध, नाथ, योगी आदि] ने इसके लिये पहले भूमि तैयार करली थी । आने वाले को तो केवल बीजा रोपड़ ही करना था जो छुवाजा मुईनुद्दीन के पूर्व आने वालोंने कर दिया था । अब छुवाजा मुईनुद्दीन ने आकर अपने नैतिक एवं सदाचार के जल से जो सिंचाई की तो अक्षुर फूटते देर न लगी । यह अक्षुर, भारतीय जनसमुदाय का इस्लाम स्वीकार करने के रूप में प्रत्यक्ष हुआ । भारतीयों को अपनी

और आकर्षित करने में मुख्य रूप से इनका निरन्तर एवं निश्चल प्रेम व्यवहार ही था और यह प्रेम व्यवहार तो इन विदेशियों की अपनी निजी सम्पत्ति थी । विदेशियों के इस व्यवहार से न्यूनाधिक भारतीय पूर्व परिचित थे, क्योंकि इस सिलसिले के सूफी छ्वाजा अबू मुहम्मद विषती सर्व प्रथम सूफी थे जो भारत वहाँ आये थे<sup>1</sup>। छ्वाजा अबू मुहम्मद विषती महमूद गज़नवी के आक्रमण के समय [सन् 997 ई० से 1030 ई० के मध्य] में भारत वहाँ आये थे । मौलाना नूस्ददीन अब्दुर्रहमान जामी ने अपनी पुस्तक "नुफ़हातुल उन्स" में लिखा है - "वर्णित कि सुल्तान महमूद व ग़ज़व-स-सौमनात रफ़्तः बुद छ्वाजा रादर वाक़्सा नमुदन्द की मददगारी दे बायद रफ़्तः दर सन् छपत्ताद सालमी बा दरवेसै चन्द मुतवज्जह बुद पूं जी जा रसीद ब नफ़्से मुबारक बुद बमुशरिफ़ान व अब्दुल अस्नाम जिहाद कई।"<sup>2</sup>

अर्थात् जिस समय सुल्तान महमूद सौमनाथ की ओर गया था, छ्वाजा अबू मुहम्मद को देवी तर्कित हुआ कि उसकी [महमूद की] सहायताएं जायें । छ्वाजा अबू मुहम्मद विषती 70 वर्ष की आयु में कुछ दरवेशों के साथी प्रस्थान कर गये और वहीं पहुँचकर स्वयं व्यक्तिगत रूप से जिहाद [धर्म-युद्ध] में सम्मिलित हो गये ।<sup>3</sup>

- 1- छ्वाजा अबू मुहम्मद विषती [मृत्यु 1032 ई०] छ्वाजा अबू अहमद विषती के पुत्र तथा खलीफा थे । छ्वाजा अली अहमद विषती, छ्वाजा अबू इस्हाक जामी के खलीफा तथा छ्वाजा नासिरुद्दीन अबू यूसुफ के पीर थे । छ्वाजा कुतुबुद्दीन मौदूद हाजी अरीफ़ जिन्दनी के पीर थे । हाजी अरीफ़ जिन्दनी के खलीफा छ्वाजा उस्मान हास्नी थे और छ्वाजा उस्मान हास्नी के खलीफा छ्वाजा मुईनुद्दीन विषती थे । [तारीख़ दावत व अज़ीमत - पृष्ठ 22-23] "मौलाना अबुल हसन अली नदवी ८
- 2- तारीख़ दावत व अज़ीमत-पृष्ठ 23, मौलाना अबुल हसन अली नदवी
- 3- देखो "नुफ़हातुल उन्स"-उर्दू- मदीना पब्लिशिंग कंपनी एब० १९० विनाह रोड, कराची, पाकिस्तान ।

छवाजा मुईनुद्दीन सन्धरी। पिशती आहाबुद्दीन मुहम्मद गौरी के सेना के साथ अथवा कुछ पूर्व दिल्ली आ चुके थे। तत्पश्चात् वे दिल्ली से अजमेर आ गये और वहीं स्थायी रूप से ठहरने का संकल्प लिया। प्राचीन इतिहासकारों [जिनमें तबक़ाते नासिरी का लेखक मिनहाजुद्दीन अलिराज ख़ुज्जानी भी सम्मिलित हैं] का मत है कि छवाजा मुईनुद्दीन पिशती आहाबुद्दीन मोहम्मद गौरी की सेना के साथ आये थे और उन्हीं के आशीर्वाद के कारण गौरी पृथ्वीराज पर विजय प्राप्त कर सका था। यद्यपि पृथ्वीराज की पराजय वाला आक्रमण आहाबुद्दीन गौरी का प्रथम आक्रमण नहीं था। इससे पूर्व भी वह भारत वर्ष पर कई आक्रमण कर चुका था, जिनमें उसे कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। पृथ्वीराज चौहान की पराजय से पूर्व आहाबुद्दीन गौरी सन् 1191 ई० में भी आक्रमण कर चुका था। इस आक्रमण में उसकी बुरी तरह पराजय हुयी थी तथा वह राजपूतों के मुकाबले पर अपनी जान बचाकर गौर वापस चला गया था। इस अपमान का बदला लेने के लिये उसने गौर में भरपूर तैयारी की और फिर सन् 1192 ई० में एक लाख बीस हजार सेना को लेकर वह दिल्ली की ओर बढ़ा तथा तराइन [वर्तमान तलबन्डी] के मैदान में उसकी सेना ने पड़ाव डाला। इस बार पृथ्वीराज चौहान एक भारी सेना [तीन लाख सवार तथा तीन हजार हाथी] लेकर आहाबुद्दीन गौरी के मुकाबले पर तराइन के मैदान में जा ठका। इस युद्ध में भारत वर्ष के लगभग डेढ़ सौ राजा अपनी सेनाओं सहित पृथ्वीराज की सहायताार्थ युद्ध भूमि में थे दोनों ओर

1- वास्तव में सही शब्द सिण्डी है, क्योंकि छवाजा मुईनुद्दीन पिशती बुरासान के भाग सिण्दान के निवासी थे। इसीलिये उन्हें सिण्डी कहते हैं, परन्तु लोग सिण्डी के स्थान पर सन्धर शब्द का प्रयोग करते हैं।

2- धानेश्वर से चौदह मील के फ़ासले पर है। भारतवर्ष के पंजाब प्रान्त में स्थित है।

ले समाधान युद्ध हुआ । इस बीच युद्ध में लाखों सिपाही मारे गये ।  
 पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई तथा उसे बन्दी बना कर मार  
 डाला गया<sup>1</sup> ।

जोन कैट ने अपने लेख "संयोगिता दी है हेलिन ऑफ़ ग्रीस"  
 में लिखा है -

"Prithvi Raj the bravest king in Bharat was captured  
 in the battle field and killed with cruel manners by his  
 enemies." (From - Sanyogita the Hellin of Greece)

इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज चौहान को युद्ध-भूमि में ही मार  
 दिया गया था । जैसा कि डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने नाटक  
 "पृथ्वीराज की जीर्णों में लिखा है कि गौरी, पृथ्वीराज चौहान को बन्दी  
 बनाकर मज़नी ले गया था और वहाँ उसकी जीर्णों निरस्तवाने के पश्चात्  
 तीर अन्दाज़ी की परीक्षा हुई थी । इस परीक्षा में चौहान ने गौरी को  
 अपने तीर का निशाना बना कर मौत के घाट उतार दिया था । तत्प-  
 श्चात् पन्द्रहवाँ, पृथ्वीराज का मित्र एवं दरबारी कवि, जो उससे घे-  
 रने गया था, और पृथ्वीराज चौहान दोनों एक दूसरे के छतार भोंक कर  
 मर गये । यह घटना जान कैट तथा अन्य भारतीय इतिहासकारों के  
 मत के आधार पर म्रिया सिद्ध होती है यह केवल एक मनछाटत कहानी  
 मात्र है । परन्तु सत्य यही है कि पृथ्वीराज चौहान को युद्ध भूमि में ही  
 मार दिया गया था ।

उत्तरी भारत में महानु राजपूत नरेश पृथ्वीराज चौहान और  
 उसकी तीन लाख से भी अधिक सेना, जिसमें साहसी एवं वीर योद्धा

---

1- प्रोफ़ेसर ईश्वरी प्रसाद तथा दूसरे इतिहासकार ।

सम्मिलित थे, जो बुरी तरह पराजित का मुँह देना पड़ा । इसका मुख्य कारण ठ्वाणा मुईनुद्दीन पिशती का आर्शीवाद ही समझा जा सकता है, जैसा कि सूफ़ी मत की अन्य पुस्तकों में वर्णित है । कुछ भी सही, इससे यह तो स्पष्ट ही है कि ठ्वाणा गौरी के आक्रमण के समय में भारतवर्ष में ही थे । कुछ दिन दिल्ली निवास के पश्चात् अजमेर चले आये थे और वहीं पर जीवन पर्यंत स्थायी रूप से रहे ।

अजमेर नगर उत्तरी भारत के अन्य नगरों की तुलना में विशेष स्थान रखता था । उसके उत्तर में पाँच मील के पीछले पर पहुँच कर झील है, जो एक प्राचीन धार्मिक स्थल है तथा तीर्थ-स्थल समझा जाता है । ऐसे धार्मिक स्थान एवं तीर्थ स्थल के निकट रहकर लोगों को इस्लाम धर्म के आधार पर सदाचार तथा नैतिकता की शिक्षा देना तथा लोगों को सद् मार्ग पर लाने के अपने संकल्प में ठ्वाणा मुईनुद्दीन पिशती की बुद्धि-मत्ता एवं दूरदर्शिता के लक्षण ही प्रतीत होते हैं अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये ठ्वाणा ने जन सम्पर्क स्थापित किया । यही वह मार्ग था जिस पर चलकर ठ्वाणा प्रेम पूर्वक लोगों को मूर्त पूजा के कुछ से निकालकर रेखेवर उपासना की ओर अग्रसर कर उन्हें "सर्व ब्रेष्ठ स्थान पर आसीन कर सके तथा उन्हें धर्म व्यवस्था की बिकला से स्वतंत्र कर "सर्व जन समान" के खुले मैदान में ला सके । तात्पर्य यह है कि ठ्वाणा मुईनुद्दीन पिशती

1- यह एक बहुत बड़ा तालाब है । इसे पहुँच कर झील के नाम से पुकारा जाता है। यह झील अजमेर से 7 मील उत्तर में है। कहा जाता है कि भारत वर्ष की सर्वप्रथम यही झील है जो खोदी गयी थी। इस स्थान पर ब्रह्मा ने यज्ञ किया था। इसी झील से सरस्वती अपनी पाँच धाराओं में प्रवृत्त हुई है। साथ ही उनकी धार्मिक पुस्तकों में लिखा है कि पहाड़ पर बने वाला पहला दुर्ग भी भारतवर्ष के अजमेर में ही बना था। [अजमेर हिस्टोरिकल मजीस्टियर पृष्ठ 18]



अण्मेरी ने लोगों के अन्दर से हीन भावना को निकाल बाहर किया । सभी मनुष्य ईश्वर की दृष्टि में समान हैं । कोई भी व्यक्ति न ऊँचा है और न नीचा । इस्लाम धर्म सभी के समान अधिकार स्वीकार करता है । इस प्रकार शिष्टाचार तथा कालीनता की शिक्षा से प्रभावित होकर जन समूह क्वाजा की खानकाह की ओर उमड़ पड़ा और धीरे-धीरे अण्मेर इस्लाम धर्म की शिक्षा का प्रचार केन्द्र बन गया । भारतवर्ष में इस प्रकार व्यवस्थित रूप से इस्लाम-धर्म-प्रचार की दागू बैल सर्व प्रथम क्वाजा मुईनुद्दीन पिरती अण्मेरी ने ही डाली । क्योंकि पिहितया तिलतिले के कार्य का प्रीमण्डल अण्मेर से व्यवस्थित रूप में हुआ था इसलिये अण्मेर की भी प्रतिष्ठा में और अधिक बढ़ोतरी हो गई ।

5- भारत वर्ष में चिश्ती सम्प्रदाय और उसके प्रमुख सूफी सन्त

॥अ॥ छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का जीवन परिचय

॥ब॥ भारत वर्ष में चिश्तिया सम्प्रदाय की आध्यात्मिक  
वंश परम्परा

॥ 1॥ छ्वाजा बख्तियार काकी

॥ 2॥ बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर

॥ 3॥ सूफी हमीदुद्दीन नागौरी

॥ 4॥ सुल्तानुल मन्शायतु हजरत निजामुद्दीन औलिया-  
मदबूबे-ए-इलाही

॥ 5॥ हजरत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर कलियारी

## भारत वर्ष में पिशती सम्प्रदाय और उसके प्रमुख सूफी सन्त

### छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती का जीवन परिचय -

छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती का जन्म सन् 536<sup>1</sup> हिजरी/1158 ई० में सुरासान के एक भाग सजिस्तान [आजका इसका कुछ भाग ईरान तथा शेष अफ़ग़ानिस्तान में सम्मिलित है] के एक नगर इस्फ़हान में हुआ था। सजिस्तान से सम्बंध होने के कारण लोग आपको सिजजी भी कहते हैं। इनका घर का नाम मुईनुद्दीन हसन तथा माता का नाम अमूल बरा अल मौसुम बीबी माहे नूर अथवा बीबी खास अल मलिका था। इनके पिता का नाम सैयद ग़यासुद्दीन हसन था, जो सुरासान के प्रतीष्ठित परिवारों में भी सम्माननीय थे। सैयद ग़यासुद्दीन हसन अपने समय के बहुत बड़े विद्वान दानी, सदाचारी एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। सैयद ग़यासुद्दीन हसन अपने पुत्र मुईनुद्दीन हसन को प्यार में कैयल हसन कहकर ही पुकारा करते थे।

वंश-श्रृंखला में छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन, हज़रत अली से लेकर ग्यार-हवीं कड़ी में, तथा हज़रत इमाम हुसैन से लेकर दसवीं कड़ी में आते हैं। छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन की माता वंश-श्रृंखला में हज़रत अली से लेकर दसवीं कड़ी में, तथा हज़रत इमाम हसन से लेकर नवीं कड़ी में आती हैं। इस प्रकार छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन अपने पिता तथा माता की ओर से हुसैनी तथा हसनी सैयद हैं। सूफी शिरोमणि हज़रत अब्दुल क़ादिर ज़ीलानी, छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन के मामू होते हैं।

छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन सिजजी<sup>2</sup> की आयु उस समय तेरह वर्ष रही होगी जब सन् 549। हिजरी में 1171 ई० में गुज़्र तुरकों ने

1- सैयद इक़बाल हुसैन ने अपनी पुस्तक छ्वाजा "मरीब नवाज़" में जन्म सन् 530 हिजरी लिखा है। अधिकांश पुस्तकों में जन्म सन् 536 हिजरी ही लिखा है।

2- अधिकांश लोग अशुद्ध उच्चारण करके सन्जरी कहते हैं।

तलपूकी बादशाह तन्जर पर आक्रमण किया था और सीस्तान को लूटपाट कर नाष्ट-भ्रष्ट कर दिया था । इस तबाही और बरबादी से छिन्न होकर छ्वाजा गुयासुद्दीन हसन सीस्तान छोड़कर खुरासान आ गये थे । यहीं पर छ्वाजा मुईनुद्दीन की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई ।

छ्वाजा मुईनुद्दीन हसन का बचपन अन्य बच्चों की तुलना में भिन्न था । आपके शेषकाल में यदि कोई स्त्री अपने शिशु के साथ आपके घर आती और वह शिशु रोने लगता तो आप अपनी माता की ओर संकेत करते । आपकी माता संकेत समझ जातीं और रोने वाले शिशु को अपना दूध पिला देतीं । ऐसा होता हुआ देखकर छ्वाजा मुईनुद्दीन अति प्रसन्न होते । जब छ्वाजा की आयु चार वर्ष की थी तो आप अपने समकक्ष बच्चों को अपने घर बुला लाते और उनकी खूब आचम्भित करते । उनको खूब खिलाते पिलाते । बचपन में ही ऐसी मनोवृत्ति थी कि आप किसी का कष्ट सहन नहीं कर पाते थे । यदि कभी कोई नंगा-भूखा दिखाई देता तो आप उसे भोजन वस्त्र देकर संतोष प्राप्त करते थे ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही सम्पन्न हुई थी । सांसारिक शिक्षा के साथ-साथ आपने धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की । नौ वर्ष की आयु में आपने कुरान शरीफ को कंठाग्र याद कर लिया था तत्पश्चात् आप विद्यालय गये और वहीं पर हदीस, फ़िक्ह तथा कुरान शरीफ की तफ़्सीर का ज्ञान प्राप्त किया । आपकी गणना थोड़े ही समय में बड़े-बड़े विद्वानों में होने लगी थी ।

जब छ्वाजा मुईनुद्दीन की आयु 15 वर्ष की थी तभी आपके पिता सैयद गुयासुद्दीन हसन का देहान्त हो गया था । पिता के देहान्त के पश्चात् आपकी देखभाल का पूरा भार आपकी माता जी के कंधों पर आन

पड़ा, जिसको उन्होंने बड़ी जिम्मेदारी एवं तन्मयता के साथ पूर्ण किया था। आपके शिक्षण-काल की सभी आवश्यकताओं का वे भली-भाँति प्रबन्ध करती थीं। हुवाजा मुईनुद्दीन अभी किसीर ही थे कि आपकी माता जी का भी देहान्त हो गया। आप अनाथ हो गये तथा साथ ही सारे उत्तरदायित्व का भार अब आपके कंधों पर आन पड़ा। इसका तो ठीक ज्ञान नहीं कि आपके कितने भाई-बहन थे, परन्तु उत्तरदायित्व में जो सम्पत्ति एक अंगूर का बाग़ तथा एक पनपनकी! आपको मिली थी उससे तो यही पता चलता है कि आपके कुछ भाई-बहन अवश्य थे। पिता-सत में मिली यह सम्पत्ति ही आपके जीवन यापन का एक मात्र साधन थी। आप अपने बाग़ में स्वयं पानी लगाते एवं देखभाल किया करते थे।

#### जीवन में शान्तिकारी घटना :-

एक बार जब आप अपने बाग़ में पानी लगा रहे थे तभी एक बुजुर्ग शैख़ इब्नाहीम कन्दूजी [मण्डूब] नामक सन्त आपके बाग़ में आकर एक वृक्ष की छाया में बैठ गये। हुवाजा मुईनुद्दीन ने उनका बहुत आदर सत्कार किया तथा एक अंगूर का गुच्छा उन्हें खाने को दिया। शैख़ इब्नाहीम कन्दूजी हुवाजा मुईनुद्दीन के इस व्यवहार से अति प्रसन्न हुये। उन्होंने अपने थैले से खल<sup>1</sup> का एक टुकड़ा लेकर मुख में रखकर चबाया, तत्पश्चात् उस चबे हुए को हुवाजा को खाने को दिया। हुवाजा मुईनुद्दीन ने उसे खाया और खाते ही काया पलट गई। कहा जाता है कि हुवाजा मुईनुद्दीन पर प्रकृति का रहस्य प्रकट

---

1. सैयद अतहर अब्बास रिजवी ने अपनी पुस्तक "A History of sufism in India" के पृष्ठ 119 पर खल के स्थान पर तिल के बीज लिखा है, परन्तु अन्य कई पुस्तकों में खल ही लिखा है। सम्भव है यह खल ही तिल के बीजों की रही होगी।

होने लगा । हृदय में एक अनोखा परिवर्तन आया । जीवन में इस क्रान्ति-कारी घटना के पश्चात् हुवाजा ने तंतार से मुख मोड़ लिया तथा उन्हें सांसारिक मोह से विरक्त उत्पन्न हो गई ।

“निगाहे मर्दे मौमिन से बदल जाती हैं तक्दीरें”

॥अललामा इक़बाल॥

अललामा इक़बाल का ज्ञान शत प्रतिशत सत्य सिद्ध हो गया ।

एक फ़कीर की पहली दृष्टि ही काम कर गई और हुवाजा को सांसारिक मायामोह से छुटकारा दिलाने में बड़ी सहायक सिद्ध हुई । इस घटना के पार पीच दिन पश्चात् हुवाजा ने अपना बाग़ तथा पनचक्की बेच कर दर-वेशों एवं निर्धनों में उसका धन वितरित कर दिया और ईश्वर-स्मरण में मग्न रहने लगे ।

तारा धन दरवेशों एवं निर्धनों में दान करने के पश्चात् हुवाजा मुईनुद्दीन हसन सिख़्ज़ी अपना निवास स्थान छोड़कर समरकन्द चले गये । वहीं समरकन्द और बुखारा में कई वर्ष धार्मिक अध्ययन में व्यतीत किए । वहीं से नीशापुर के निज्ज क़स्बा हासून चले गये और हुवाजा उसमान हासूनी से प्रभावित होकर उनके शिष्य हो गये । हुवाजा हासूनी की देख-रेख में हुवाजा मुईनुद्दीन ने लगभग द्वाइ वर्ष तपस्या की । हुवाजा उसमान हासूनी पिशती परम्परा के सूफ़ियों में से एक थे । इनका शिष्यत्त्व ग्रहण करने के पश्चात् हुवाजा मुईनुद्दीन हसन सिख़्ज़ी पिशती हो गये । पिशती सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् ही हुवाजा मुईनुद्दीन हसन सिख़्ज़ी के नाम के साथ पिशती शब्द भी जुड़ गया । पिशती सम्प्रदाय की आध्या-त्मिक वीर्य शक्ति नीचे दर्शनीय है ।

ख्वाजा मुहम्मद इसहाक शामी चिश्ती

।

शाम के निवासी थे बाद में प्रिण्ट  
नगर में आकर निवास करने लगे थे।

ख्वाजा नासिबुद्दीन चिश्ती

।

ख्वाजा मौदूद चिश्ती

।

हाजी शरीफ़ फ़िन्दनी चिश्ती

।

शेख़ उस्मान हाल्ली चिश्ती

।

ख्वाजा मुईनुद्दीन हसन सिख़ज़ी चिश्ती

यह आध्यात्मिक वंश श्रृंखला ख्वाजा हसन बसरी के माध्यम से हज़रत अली तक पहुँचती है। हज़रत अली **पहले खलीफ़ा**, मृत्यु सन् 6। हिजरी। अधिकांश सूफ़ियों के प्रथम आध्यात्मिक गुरु हैं। सूफ़ी मत का श्रोत वही है। उनके मतानुसार पैग़म्बर मुहम्मद साहब को ईश्वर ने दो प्रकार का ज्ञान दिया था—एक था "इल्म-ए-सीना" और दूसरा था "इल्म-ए-सफ़ीना"। मुहम्मद साहब ने इल्म-ए-सीना **आन्तरिक-ज्ञान** की शिक्षा केवल हज़रत अली को दी थी। वही इल्म-ए-सीना सूफ़ियों को हज़रत अली से प्राप्त हुआ। हज़रत अली ने अपने शिष्य बसरा के ख्वाजा हसन को इसकी दीक्षा दी थी। ख्वाजा हसन ने उसे अपने शिष्यों को दी और इस प्रकार सिल-सिला जारी रहा जो एक श्रृंखला का रूप धारण कर गया। वही ज्ञान ख्वाजा मुईनुद्दीन हसन सिख़ज़ी चिश्ती को हज़रत अली से निम्न लिखित श्रृंखला के माध्यम से प्राप्त हुआ था :-

हजरत मुहम्मद साहब {पैगम्बर}

हजरत अली {चतुर्थ खलीफा}

उवाजा हसन बसरी

उवाजा अब्दुल वाहिद बिन फ़ैद

{फ़ैदीया सम्प्रदाय}

उवाजा हबीब अजगी

उवाजा फ़ज़ल बिन अयाज़

{अयाज़िया सम्प्रदाय}

सुल्तान इब्नाहीम बिन अय्यम बलूची

{अय्यमिया सम्प्रदाय}

उवाजा हज़ीफ़ुल मरअशी

उवाजा हुबैर अल बसरी

{हुबैरिया सम्प्रदाय}

उवाजा अबू मुमशाद दीनारी

उवाजा अबू इस्हाक़ शामी चिश्ती

{चिश्तिया सम्प्रदाय}

उवाजा अबू अहमद चिश्ती

उवाजा अबू मुहम्मद चिश्ती

उवाजा नासिदुद्दीन युसुफ़ चिश्ती

उवाजा कुतुबुद्दीन मौदूद चिश्ती



ख़्वाजा हाजी शरीफ़ ज़िन्दनी चिश्ती

।

ख़्वाजा उसमान हास्नी चिश्ती

।

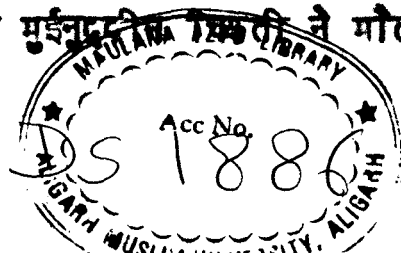
ख़्वाजा मुईनुद्दीन हसन सिपणजी चिश्ती।

॥ भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के प्रधान ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ख़्वाजा उसमान हास्नी का शिष्यत्व ग्रहण करके उस श्रृंखला की एक कड़ी बन गई जो पैमम्बर मुहम्मद साहब तक पहुँचती है। ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने घोर तपस्या की और आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ अपने गुरु की सेवा भी करते रहे। ख़्वाजा उसमान हास्नी ने प्रसन्न होकर उन्हें अपना खलीफ़ा नियुक्त किया तथा परम्परानुसार इन्हें एक खिरक़ा भी पहनने को दिया।

खलीफ़ा नियुक्त होने के पश्चात् ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती बग़दाद गये फिर सन्जान जाकर शेख़ नजमुद्दीन कुबरा से भेंट की। थोड़े समय रुककर ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती जिल चले गये जहाँ तुर्की शिरोमणि शेख़ अब्दुल क़ादिर ग़ीलानी ॥दीध्यात की ओर से गामू तथा ननिहाल की ओर से रिश्ते के भाई॥ से भेंट की। और आठ सप्ताह उनकी संगति में रहे। यहीं से ख़्वाजा एक सप्ताह की यात्रा करके बग़दाद चले गये और काफी समय तक वहीं ठहरे रहे। बग़दाद निवास के दौरान ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने शेख़ शहाबुद्दीन सुहरवर्दी के पीर और चचा शेख़ ज़ियाउद्दीन शेख़ ओहदुद्दीन किरमानी तथा शेख़ शहाबुद्दीन सुहरवर्दी से भेंट करके आध्यात्मिक लाभ उठाया।

बगदाद से छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती हमदान वापस चले गये ।  
 यहाँ शेख यूसुफ हमदानी से भेंट की फिर हमदान से तबरेज़ चले गये और  
 शेख जलालुद्दीन तबरेज़ी के गुरु शेख अबूसईद तबरेज़ी से भेंट की ।  
 यहीं से छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती ने मेहाना और खिरकान की यात्रा  
 की और क्रमशः शेख अबू सईद बिन अबुल छैर और शेख अबुल हसन खिरकानी  
 के मजारों पर श्रद्धांजलि देकर फ़ातिहा पढ़ी । फिर इसी भू क्षेत्र  
 पर लगभग 2 वर्ष तक ठहरे रहे । इसके बाद छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती  
 अस्तराबाद चले गये और शेख नसीरुद्दीन अस्तराबादी के मजार पर  
 फ़ातिहा पढ़ी । अस्तराबाद से छ्वाजा मुईनुद्दीन हिरात चले गये और  
 शेख अबुल्ला अन्सारी के मजार के निकट ठहर गये । "एक ही स्थान पर  
 अधिक न ठहरे रहें" के सिद्धान्त पर अपने एक सेवक को साथ लेकर छ्वाजा  
 मुईनुद्दीन हिरात के ही चारों ओर भ्रमण शील जीवन व्यतीत करने लगे ।  
 यहीं पर जन साधारण में आप जब ब्रह्मा की दृष्टि से देखे जाने लगे तो  
 छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती ने सब्ज वार की ओर प्रस्थान किया । सब्ज-  
 वार का गवर्नर मुहम्मद यादगार शिष्या था, छ्वाजा से प्रभावित होकर  
 सुन्नी हो गया । कुछ दिन छ्वाजा ने मुहम्मद यादगार के साथ व्यतीत  
 किये । तत्पश्चात् मुहम्मद यादगार को साथ लेकर हिसार शादमान की  
 यात्रा की । मुहम्मद यादगार को हिसार शादमान में छोड़कर छ्वाजा  
 मुईनुद्दीन पिशती बलख चले गये, जहाँ छ्वाजा से प्रभावित होकर मौलाना  
 जियाउद्दीन हकीम ने भी फकीरी ले ली । इससे पूर्व मौलाना सुफ़ियों की  
 घोर निन्दा किया करते थे । मौलाना एक दार्शनिक थे और अनेक शिष्य  
 रखते थे । जब मौलाना ने अपनी सारी सम्पत्ति निर्धनों में दान कर दी  
 और छ्वाजा के शिष्य हो गये तो उनके शिष्य भी छ्वाजा के शिष्य हो  
 गये । छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती ने मौलाना को अपना ख़लीफ़ा नियुक्त



किया और वहीं छोड़कर गुज़नी चले गये । गुज़नी में शेख़ निज़ामुद्दीन अबुल मुवय्यद के गुरु शमसुल आरिफ़ीन अब्दुल पाहिद से भेंट की और लाहौर की ओर प्रस्थान किया । लाहौर में शेख़ अली हुजवेरी तथा शेख़ जन्जानी के मजारों के मध्य चालीस दिन तक एकान्त वास किया । इसके पश्चात छ्वाजा दिल्ली पधारे । दिल्ली में छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती उस स्थान पर छहरे जहाँ आजकल शेख़ राशिद मस्की का मजार है । इस स्थान पर छ्वाजा द्वारा बनवाई मसजिद के छहठरात आज भी देखे जा सकते हैं । जब दिल्ली की जनता छ्वाजा के पास भीड़ करने लगी तो छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेर चले गये और वहीं स्थान स्थापना से रहने का संकल्प किया । अजमेर में छ्वाजा मुहम्मद गौरी के आक्रमण ११९२ ई० के समय आ चुके थे<sup>१</sup> ।

१०<sup>२</sup>वर्ष की आयु में छ्वाजा ने अजमेर में एक के पश्चात दूसरा, दो विवाह किये । ऐसा करके छ्वाजा ने इस्लामी विधान<sup>३</sup> का पालन किया था । गौरी शततारी के अनुसार अजमेर में आने के कुछ समय पश्चात छ्वाजा ने विवाह कर लिया था और अपनी पत्नी के साथ लगभग २७<sup>४</sup> वर्ष व्यतीत किये थे । दूसरा विवाह छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी ने क्षेत्रीय हिन्दू सरदार की पुत्री से किया था । दोनों ही पत्नियों से छ्वाजा के सन्तानें थीं ।

१- 'A History of Sufism in India - Part- 1' पृष्ठ ११६-१२३ तैयद

अहमद अय्यास रिजवी ।

२- सुरू तस्सुदूर पृष्ठ-२२७

३- इस्लामी विधान के अनुसार प्रत्येक स्त्री पुरुष को व्यस्क हो जाने पर विवाह कर लेना चाहिए ।

४- " गुलज़ारे अबरार "

अजमेर पृथ्वीराज चौहान की दिल्ली से पूर्व राजधानी रह चुका था । हिन्दू जन-साधारण में अजमेर नगर और उसके उत्तर में पीप मील के फासले पर पुष्कर झील तीर्थ स्थल का महत्व रखते थे । उनके मतानुसार भारत वर्ष में सर्व प्रथम दुर्ग था जो अजमेर में पहाड़ी पर निर्मित हुआ था और भारत में सर्व प्रथम झील पुष्कर में ही खोदी गई थी । उनका कहना है कि पुष्कर के स्थान पर ही ब्रह्मा ने यज्ञ किया था । पुष्कर झील से ही सरस्वती पीप धाराओं में फूटी थी । "हिन्दुस्तानी तारीख में लिखा है कि अज्जल किला पहाड़ पर जो हिन्दुस्तान में बना, यही किला अजमेर है और अज्जल तालाब जो हिन्दुस्तान में खोदा गया, यही पुष्कर झील है जो अजमेर से तीन कोस की दूरी पर है । -----जो लोग क़्यामत के कायल हैं उनका कहना है कि क़्यामत इसी तालाब से कायम होगी ।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि छ्वाजा ने अपने स्थाई निवास को हिन्दुओं के तीर्थ स्थल के निकट ही चुना था । इससे छ्वाजा का क्या उद्देश्य हो सकता था ? प्रत्यक्ष है कि छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती एक ईश्वर के स्थान पर अनेक देवी देवताओं की पूजा को समाप्त कर देना चाहते थे । इस्लामी माध्यम से एक ईश्वर की भक्ति पर बल देते हुए हिन्दू समाज से स्त्रीमादिता एवं आडम्बर को निकाल फेंकना चाहते थे । ॐ नीच, छुआछात के जाल को तोड़कर सभी को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे । उनके अन्दर विनम्रता, आलीनता लाकर उदण्डता को तिल्लीजलील दिलाना चाहते थे । छ्वाजा मुईनुद्दीन के चमत्कारिक प्रभाव ने जन साधारण की काया पलट दी । दूर-दूर से लोग छ्वाजा मुईनुद्दीन की शरण में आते और तर्ज व्यवस्था के धुर को अपने कंधों से उतार फेंक कर इस्लाम के अनुसार "सर्व जन समान"

1- अख्वास्त अखियार की इतरास्त अबरार [उर्दू] शेख अब्दुल हक मुहम्मिदस देहलवी ।

अनुवाद-सैयद यासीन अली, मुसलिम प्रेस देहली सन 1328हिजरी/1908 ई0

का मुकुट अपने-अपने शीशों पर रखकर इस्लाम धर्म की शिक्षा ग्रहण करते और मुसलमान हो जाते थे ।

इसके अपेक्षा छ्वाजा आने वालों की अच्छी प्रकार आवभात करते थे । साधार और मजबूर लोगों को द्वाइस बंधाते थे । निर्धनों को धन वितरित कर उनकी सहायता करते थे । कौन सा ऐसा गरीब व्यक्ति था जो छ्वाजा मुईनुद्दीन शिश्ती की खानकाह से खाली हाथ लौटता था ? छ्वाजा गरीबों के साथ बड़ी नम्रता का व्यवहार करते थे । क्योंकि छ्वाजा मुईनुद्दीन शिश्ती गरीबों को नवाज़ते थे, इसीलिये उनका एक नाम भारत वर्ष ने भी दिया और वह था "गरीब नवाज़" ।

इस प्रकार छ्वाजा मुईनुद्दीन शिश्ती उर्फ गरीब नवाज़, सुल्तानुल हिन्द, हिन्द के वली आदि-आदि विभेदों के साथ पुकारे जाने लगे ।

नैतिकता, साधार एवं परस्पर प्रेम की शिक्षा देते हुये छ्वाजा मुईनुद्दीन संसार से विदा हो गये । उनका देहान्त 97 वर्ष की आयु में 6 रजब 633 हिजरी [16 मार्च 1236 ई०] को अजमेर में हो गया । छ्वाजा को उसी स्थान पर दफनाया गया जहाँ वे रहा करते थे । सर्व प्रथम आपकी कब्र कच्ची थी । बाद में उस पर एक पत्थर का सन्दूक बना कर रख दिया । कालान्तर में उसी के ऊपर मुख्य मकबरा बनवाया गया । यही कारण है कि अजमेर नगर की सड़कों से आज भी मज़ार बहुत ऊँचा है । इसके पश्चात् समय-समय पर मुसलिम शासकों ने इस मज़ार के निकट अनेक इमारतें बनवाई हैं । छ्वाजा के देहान्त के पश्चात् उनके खलीफा छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी नियुक्त हुये । उन्होंने इस सिलसिले को आगे बढ़ाने में अपने गुरु का अनुसरण किया । छ्वाजा बख्तियार का मज़ार महरौली दिल्ली में है ।

### भारतवर्ष में चिश्तिया सम्प्रदाय की आध्यात्मिक वंश-परंपरा =====

छवाणा मुईनुद्दीन चिश्ती के जीवन-काल में यद्यपि लाखों लोग उनकी शिष्यता ग्रहण कर चुके थे, फिर भी चिश्तिया सम्प्रदाय को भारत वर्ष में प्रसारित करने का श्रेय मुख्य रूप से उनके दो शिष्यों—छवाणा हमी-दुद्दीन नागौरी तथा छवाणा कुतुबुद्दीन बडित्यार काकी उमी को ही पहुँचता है । इन्होंने अपने आध्यात्मिक गुरु छवाणा मुईनुद्दीन के पद चिन्हों पर चलकर पूरी आस्था के साथ उनकी शिक्षा के आधार पर कार्य करते हुये अपने सम्प्रदाय को पूरे भारत वर्ष में सफलता पूर्वक फैलाया । अजमेर के अलावा छवाणा मुईनुद्दीन चिश्ती ने पृथ्वीराज के शासन-काल में जहाँ-जहाँ अपने सम्प्रदाय की खान क़ाहें स्थापित की थी । उनमें बदायूँ बनारस, कन्नौज, नागौर तथा बिहार के कुछ नगर प्रमुख हैं । यद्यपि चिश्तिया सम्प्रदाय के इस आध्यात्मिक वंश की जड़ें तो अजमेर में ही थीं, परन्तु इसकी शाखाएँ सम्पूर्ण भारत वर्ष में फैल चुकी थीं । इन विभिन्न शाखाओं पर लगने वाले आध्यात्मिक फलों [इसी परम्परा के अन्य सुफी-सन्त] का रसास्वादन क्षेत्रीय जनता बड़े आनन्द पूर्वक करने लगी । छवाणा मुईनुद्दीन चिश्ती के इस सम्प्रदाय में लीपकर बनाने वाले सुफियों में सर्व प्रथम स्थान उनके शिष्य छवाणा कुतुबुद्दीन बडित्यार काकी उमी का तथा द्वितीय स्थान सुफी हमीनुद्दीन नागौरी का था । इनके शिष्यों ने इस सम्प्रदाय को परिपक्व करके नवीनता प्रदान की थी । अतः आवश्यक है कि छवाणा कुतुबुद्दीन बडित्यार काकी और सुफी हमीनुद्दीन नागौरी व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डाला जाए -

### छ्वाजा मुईनुद्दीन पिशती

छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी  
[दिल्ली में]

सूफी हमीनुद्दीन नामोरी  
[अजमेर में]

### छ्वाजा बख्तियार काकी

छ्वाजा बख्तियार काकी का जन्म मावया उम्नहर के कस्बा अजमेर में 1186 ई० में हुआ था। इनका नाम कुतुबुद्दीन था। इनके पिता का नाम छ्वाजा क्वालुद्दीन अहमद था। छ्वाजा कुतुबुद्दीन हज़रत इमाम हुसैन से लेकर वंश प्रख्याता की चौदहवीं कड़ी में और हज़रत अली से पन्द्रहवीं कड़ी में आते हैं। इनकी वंश परम्परा इस प्रकार है - छ्वाजा बख्तियार काकी बिन छ्वाजा क्वालुद्दीन अहमद बिन मूसा बिन अहमद अमी, बिन क्वालुद्दीन बिन मुहम्मद बिन अहमद रशीउद्दीन बिन हितामुद्दीन बिन रशीदुद्दीन बिन जाफ़र बिन नकी अल वुज़ूद बिन अली मूसा रज़ा बिन मूसा काज़िम बिन जाफ़र आदिक् बिन मुहम्मद बाक़र बिन अली ज़ैनुल आबिदीन बिन इमाम हुसैन बिन हज़रत अली खलीफ़ा चतुर्थ।

1- याक़ूत ने अपनी पुस्तक "नजमुल बलदान" में अजमेर को इस्फ़हान में फ़रग़ना के निकट एक बड़ा नगर लिखा है।

छ्वाजा कुतुबुद्दीन के नाम में दो विशेषण संलग्न हैं । इनमें से एक बड़ित्यार (भाग्य का भ्राता) है । इनके गुरु छ्वाजा मुईनुद्दीन घिश्ती का दिया हुआ है और दूसरा, काकी (रोटी) से संबंधित है ।

छ्वाजा कुतुबुद्दीन बड़ित्यार की आयु जब केवल डेढ़ वर्ष की ही थी तभी उनके पिता का देहांत हो गया । उनके पालन-पोषण और शिक्षा दीक्षा का भार इनकी माता के कंधे पर आन पड़ा । इनकी माता बड़ी धर्म निष्ठ महिला थीं जो आये कुरान-शरीफ की हाफिज़ा भी थीं । इनके धार्मिक विचारों की छाप छ्वाजा कुतुबुद्दीन पर पूरी-पूरी पड़ी । जब छ्वाजा बड़ित्यार की उम्र 4 वर्ष, 4 महीने 4 दिन की थी तब इनकी माताजी ने आपकी पारम्परिक शिक्षा का श्री गणेश किया और

1- एक समय छ्वाजा कुतुबुद्दीन बड़ित्यार काकी दिल्ली में शम्सी तालाब के किनारे अपने कुछ शिष्यों के साथ बैठे हुये थे । शिष्यों ने ये इच्छा प्रकट की कि गर्म-गर्म रोटियाँ खाने को मिलें । तो छ्वाजा कुतुबुद्दीन ने तालाब में हाथ डुबोकर गर्म-गर्म रोटियाँ निकालीं और खाने को दीं। तभी से काकी नाम पड़ गया क्योंकि "काक" का अर्थ रोटी है ।

दूसरा कारण यह भी बताया जाता है कि निर्धनता के कारण आपकी पत्नी पड़ोस में रहने वाले बक़्काल (बनिरा) की पत्नी से उधार ले लिया करती थीं । एक दिन उसने ताना मारते हुए कहा कि हम न दें तो तुम भूखे मर जाओ । छ्वाजा ने जब यह सुनी तो उन्हें बुरी लगी । उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि भविष्य में मेरी ताक से आवश्यकता-नुसार रोटियाँ निकाल लिया करो । अतः इनकी पत्नी निकाल लिया करती थी । तभी से इनका नाम काकी पड़ गया ।



आपने अपने सेवक के साथ उवाणा अबू हफ़स के पास भिजवाया । उवाणा अबू हफ़स के द्वारा इन्होंने क़ुरान शरीफ़ पढ़ा और उसे क़ौशुफ़ कर लिया । साथ ही हदीस और फ़िक़ह का ज्ञान भी इन्हीं की देख रेख में प्राप्त किया । जब उवाणा ने सौतारिक शिक्षा पूर्ण कर ली तो ईश्वर की उपासना में तल्लीन हो गए । आपका अधीकीकृत समय ईश्वर के ध्यान मग्न रहने में ही व्यतीत होता था । जब उवाणा कुछ और बड़े हुए तो आपकी माताजी ने आपका विवाह कर दिया । ईश्वरोपासना में बाधा समझते हुए आपने अपनी पत्नी को तलाक़ [सम्बन्ध विच्छेद करना] दे दिया । और बग़दाद चले गये । वहीं इनकी भेंट उवाणा मुईनुद्दीन हसन पिशती से हुई । उवाणा कुतुबुद्दीन उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुये और उनके शिष्य हो गये । उसी समय बग़दाद में उवाणा मुईनुद्दीन पिशती के अलावा महान सूफ़ी शिरोमणि शेख़ अब्दुल कादिर जीलानी तथा शेख़ नजीब सुहर-वर्दी भी उपस्थित थे । इन सभी गुणवान सर्व महान सूफ़ियों की उपस्थिति में उवाणा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी को फ़कीह अबुल तैस समरकन्दी की

1- "सफ़ीनतुल औलिया" के लेखक द्वारा शिक़ील पुत्र शाह जहाँ बादशाह ने लिखा है कि उवाणा बख़्तियार काकी उवाणामुईनुद्दीन पिशती के शिष्य उमा में ही हुये थे । जब उवाणा उमा में आये तो कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी ने उनसे भेंट की तथा मुरीद हो गये । "सफ़ीनतुल औलिया-उर्दू, साहिबरी बुक डिपो देव बन्द, पृष्ठ-20

"हमारे वली" नामक पुस्तक के लेखक अहमद मुस्तफ़ा सिद्दीकी लिखते हैं कि जब उवाणा मुईनुद्दीन फ़िरते-फ़िराते इस्फ़हान आये तो उवाणा कुतुबुद्दीन ने उनसे भेंट की तथा उनके शिष्य हो गये [पृष्ठ 104]

ऐतिहासिक मीस्जिद में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ओर से "खिरका-ए-खिलाफल" प्रदान किया गया और उसी दिन से ख्वाजा कुतुबुद्दीन, ख्वाजा नवाज़ के उत्तीफा नियुक्त हुये ।

जब ख्वाजा गरीब नवाज़ मुईनुद्दीन चिश्ती बग़दाद से वापस चले आए, तो अपने गुरु का वियोग न सहन कर सकने के कारण ख्वाजा बीछतियार काकी अपनी मातृभूमि को सदा के लिये त्याग कर मुल्तान होते हुये अपने परम गुरु के पास गए । वह उनकी संगति में दिल्ली रहने लगे । ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने ख्वाजा बीछतियार काकी को दिल्ली में रहने का परमर्श दिया और अजमेर चले गये । दिल्ली आते हुये कुतुबुद्दीन बीछतियार काकी ने मुल्तान में कुछ समय रहकर शेर बहाउद्दीन तबरेज़ी तथा शेर बहाउद्दीन ज़कीरिया मुल्तानी की सद-संगति से लाभ प्राप्त कर लिया था ।

ख्वाजा कुतुबुद्दीन बीछतियार काकी लगभग सन् 1221 ई० में दिल्ली पधारे थे । उस समय दिल्ली में शमसुद्दीन इल्तुतमिश राज्द कर रहा था । सुल्तान शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने ख्वाजा के दिल्ली आने पर उनका भव्य स्वागत किया । उनसे प्रार्थना की कि वो दिल्ली में ही निवास करें । परन्तु ख्वाजा कुतुबुद्दीन बीछतियार काकी ने इसे स्वीकार नहीं किया और यमुना के किनारे किलोखड़ी में रहना पसन्द किया । कुछ समय पश्चात् ख्वाजा कुतुबुद्दीन ने अपने शेर ख्वाजा गरीब नवाज़ से भेंट करने की प्रार्थना की जिसे ख्वाजा गरीब नवाज़ ने उत्पीकार कर दिया और उन्हें दिल्ली में ही रहने की आज्ञा दी । ख्वाजा कुतुबुद्दीन दिल्ली में रहकर चिश्तिया सम्प्रदाय की गरिमा और प्रतिष्ठा को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहे । गणमान्य, भू और कुलीन पुरुषों को ख्वाजा की ओर आकीर्षित होते देख शेरबहाउद्दीन मुहम्मद सुग़रा को ईर्ष्या होने लगी ।

अतः उन्होंने छ्वाजा का अनादर करना प्रारम्भ कर दिया । जब छ्वाजा मुईनुद्दीन यिश्ती दिल्ली आए तो शेरूल इस्लाम के व्यवहार को सुनकर छ्वाजा बहिर्द्वार को अन्दर ले जाने लगे । छ्वाजा कुतुबुद्दीन का दिल्ली छोड़कर जाना, दिल्ली की जनता के साथ-साथ सुल्तान इल्तुतमिश को भी सहन नहीं हुआ । सुल्तान दिल्ली की जनता के साथ छ्वाजा कुतुबुद्दीन को आग्रह करके दिल्ली वापस ले आए । इस प्रकार छ्वाजा नित्य-प्रति नैतिकता एवं सदाचार की शिक्षा लोगों को देते रहे । छ्वाजा की सभा की महीफल सजाने का बड़ा शौक था । छ्वाजा कुतुबुद्दीन कई-कई दिन तक इस महीफल में कव्वालियाँ सुनते रहते थे । सुफियों के अनुसार कव्वाल का स्थ की गिज़ा ॥आत्मा का भोजन॥ है ।

एक दिन छ्वाजा कुतुबुद्दीन सभा की महीफल में बैठे कव्वालियाँ सुन रहे थे । यह महीफल शेख अली सिकण्जी<sup>2</sup> की खानकाह में आयोजित की गई थी । कव्वाल ने गाना आरम्भ किया -

“कुब्तगाने खन्जरे तस्लीम रा

हर ज़मी अज़ ग़ैब जाने दीगरस्त”<sup>3</sup>

॥शेख अहमद जामी॥<sup>4</sup>

अर्थात् “जो तेरी ॥ईश्वर की॥ आज्ञा लपी तलवार से कुत्ल किए जाते हैं । उन्हें तेरी ओर से ॥ईश्वर की ओर से॥ प्रत्येक क्षण नया जीवन प्रदान किया जाता है ।”

1- सियल आलिया- पृष्ठ 54-55

2- कुछ अन्य पुस्तकों में सन्धरी शब्द दिया है ।

3- “तारीख-स-दावत व अज़ीमत”-मौलाना अबुल हसन अली नक्वी ।

4- शेख अहमद जामी को जिन्दा पील॥हाथी॥ के नाम से भी जाना जाता है। ये जाम नगर से आए थे जो यिश्त नगर के निकट है। सूफी, कवि दोनों ही क्षेत्रों में उनकी प्रसिद्धि रही है। इनका देहान्त मुह 536हि0/ अगस्त 1141 ई0 में हुआ था  
अत्तर अब्बास रिज़वी

कहा जाता है कि छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के प्राण प्रथम पीजित सुने पर पड़े हो जाते थे और द्वितीय पीजित बोले जाने पर पुनः प्राण वापस आ जाते थे । यही स्थिति चार दिन तक निरन्तर बनी रही और पीचषी रात्रि को सन् 633 हि०/नवम्बर 1237 ई० दिन सोमवार को इनका देहान्त हो गया । इन्हें उस स्थान पर दफनाया गया जिसको आपने मृत्यु पूर्व ईद की नमाज़ से लौटते समय पसन्द किया था । यह स्थान कुतुबमीनार के निकट महरौली नामक क़स्बा नई दिल्ली में स्थित है । छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के दो पुत्रों ने जन्म लिया था । इनमें से एक तो लम्बे समय तक जीवित रहे । परन्तु दूसरे पुत्र का देहान्त सात वर्ष की आयु में हो गया था । छ्वाजा बख्तियार काकी को उनके पुत्र के देहान्त का भी पता उस समय तक न चल सका जब तक कि उनकी पत्नि के रोने ने उनकी-ध्यानावस्था को भंग न कर दिया ।

छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी ने अपने जीवन काल में विशेष रूप से नौ शिष्यों को अपनी संगति में रखकर दीक्षित किया था, जिनमें केवल दो को ही अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हो सकी । जिनमें उनके दिल्ली स्थित ख़लीफ़ा शेख़ बदल्ददीन ग़ज़नवी थे । मंगोल आक्रमणकारियों के द्वारा आपके परिवार के मारे जाने की सूचना भी आपको दिल्ली में ही मिली ।

छ्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के देहान्त के पश्चात् छ्वाजा बदल्ददीन ग़ज़नवी राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे थे जब कि सामान्यतः पिथितया सम्प्रदाय के सिद्धांतों के यह विपरीत था । शेख़ बदल्ददीन का देहान्त सन् 657 ई० / 1259 ई० में हुआ और अपने गुरु के निकट ही महरौली में उनको दफनाया गया । इस प्रकार राजनीति में भाग लेने के

कारण दिल्ली में विविध संप्रदाय का कार्य ठन्डा सा पड़ गया ।

### बाबा फरीदुद्दीन गणेशकर -

छवाणा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के दूसरे शिष्य शेख फरीदुद्दीन मतऊ गणेशकर थे, जिनको सामान्य रूप से बाबा फरीद के नाम से जाना जाता है । बाबा फरीद के पूर्वज बारहवीं शताब्दी ई० के मध्य में काबूल से आए थे । इनके पिता का नाम काज़ी शुरेब था । यह पहले लाहौर आए, फिर यहाँ से क़सर चले गए जो लाहौर के दक्षिण पूर्व में एक नगर है । गज़नवी सुल्तान ने उन्हें मुल्तान के एक नगर कथवाल का काज़ी नियुक्त कर दिया । यह नगर महारान और अजोधन के मध्य स्थित है । यहीं पर काज़ी शुरेब का विवाह हो गया और उनके तीन पुत्रों इब्नुद्दीन महमूद, फरीदुद्दीन तथा नजीबुद्दीन का जन्म हुआ ।

बाबा फरीद का जन्म सन् 569 हि० / 1174 ई० अथवा 571 हि० 1176 ई० में हुआ था । इनके पिता उच्च कोटि के विद्वान थे परन्तु इनकी माता बड़ी धर्मीनष्ठ एवं पवित्र विचारों की महिला थीं। बाबा फरीद पर उनकी माँ का अधिक प्रभाव रहा था । बाबा फरीद बचपन से ही ईश्वरोपासक थे । वे कथवाल की मस्जिद के पीछे बिना भोजन और वस्त्रों के चले जाते थे और लम्बे समय तक ध्यान मग्न रहते ।

अठारह वर्ष की आयु में बाबा फरीद मुल्तान आकर रहने लगे और मौलाना मिनहाजुद्दीन तिरिम्झी से शिक्षा ग्रहण की । यहीं पर उनकी भेंट छवाणा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी से हुई और उनसे प्रभावित होकर उनके शरीफ हो गये । कुछ समय पश्चात् छवाणा कुतुब दिल्ली चले आए । इसके कुछ समय पश्चात् बाबा फरीद भी दिल्ली छवाणा के

जमाअत खाने में बाबा फ़रीद प्रमुख सुफ़ियों की श्रेणी में गिने जाते थे ।  
जमाअत खाने के निकट एक छोटी सी कौठरी में ख़्वाजा उपासना में  
मग्न रहते थे ।

कुछ समय पश्चात बाबा फ़रीद अपने गुरु की आज्ञा से उच्च  
घले गए और वहीं सत्ताते माकूस [कुर्से में उल्टा लटक ईश्वर का ध्यान  
लगाना] पढ़ा करते थे । जब बाबा फ़रीद दिल्ली आसतों उनसे श्रद्धा  
रखने वालों की भीड़ जमा होने लगी । परिणाम स्वरूप आप दिल्ली  
छोड़कर झींसी घले गये । जब ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी का  
देहान्त हुआ तब बाबा फ़रीद उपस्थित नहीं थे । पाँच दिन उपरान्त  
जब बाबा फ़रीद दिल्ली पहुँचे तो काज़ी हमीनुद्दीन नागौरी ने ख़्वाजा  
कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी की इच्छानुसार उन्हें ख़िलाफ़त की सभी  
वस्तुएँ देकर ख़लीफ़ा नियुक्त किया । बाबा फ़रीद दिल्ली से फिर  
झींसी आ गए और फिर अजोधन आकर वहीं स्थायी रूप से रहने लगे ।  
अजोधन में वे सन् 1236 ई० से अपने मृत्यु काल 5 मुहर्रम 664 हि०  
17 अक्टूबर 1265 ई० तक रहे ।

#### ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी



शेख़ बदल्ददीन गुज़नवी  
[दिल्ली]

शेख़ फ़रीदुद्दीन मसूद गंजशकर  
[अजोधम पाक पददन] पाकिस्तान

### सुफी हमीदुद्दीन नागौरी -

इनका असली नाम हमीदुद्दीन नागौरी था तथा इनके पिता का नाम अहमद था । इनके पिता लाहौर से प्रस्थान करके दिल्ली आ गये थे । वहीं दिल्ली में मुहम्मद आलमुद्दीन गौरी के आक्रमण [सन् 1192 ई०] के पश्चात् सुफी हमीदुद्दीन का जन्म हुआ । छ्वाजा हमीदुद्दीन हज़रत सऊद बिन ज़ेद के वंशज हैं जो पैग़म्बर मुहम्मद साहब के सहाबा में से थे । छ्वाजा हमीदुद्दीन नागौरी के प्रारम्भिक गुस्त्रों में मौलाना शम्सुद्दीन हलवाई तथा शेख मुहम्मद जुवैयनी थे ।

छ्वाजा हमीदुद्दीन को अरबी तथा फ़ारसी का विशेष ज्ञान था । उन्होंने राजस्थान में बोली जाने वाली हिन्दी भाषा पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया था । अपनी पुस्तक "सुलतुससुदूर" [पृष्ठ 10] में लिखा है -

#### ब ज़बान-ए-हिन्दवी गुफ्तान्द

जब छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती प्रथम बार दिल्ली आये थे तभी उनके व्यक्तित्व का प्रभाव ऐसा पड़ा कि सुफी हमीदुद्दीन नागौरी उनके साथ अजमेर चले गये और वहाँ जाकर उनके शिष्य हो गये । सुफी हमीदुद्दीन नागौरी नागौर के निकट एक छोटे से गाँव सुवाली में रहकर केवल एक बीघा खेत में कृषि कार्य करते थे । यही उनकी जीविका का साधन था । इनके गुरु छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने इन्हें सुलतानुल-तारिकीनकी उपाधि से सम्मानित किया था । कारण यह था कि एक दिन इनके गुरु छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने लोगों से कहा कि तुम में से जो भी इस समय इच्छा करेगा, उसकी इच्छा ईश्वर पूरी करेगा ।

कुछ अन्य लोगों ने अपनी वांछित वस्तुओं के लिए प्रार्थना की और उन्हें प्रदान की गई। जब छ्वाजा मुईनुद्दीन यिश्ती ने सूफी हमीदुद्दीन से कुछ मांग ने कोछा तो उन्होंने यह कहकर संतोष कर लिया -

"बन्द-ए रा छ्वास्ती न बाश्द छ्वास्त-ए मोलास्त<sup>1</sup>।"

अर्थात्- "दास की कोई इच्छा नहीं है, जो भी इच्छा है वह उस परम प्रिय ईश्वर की इच्छा के अनुसार है।" यह सुनकर छ्वाजा मुईनुद्दीन यिश्ती अति प्रसन्न हुए और बोले -

"अल तारिक-अल दुनियाह व अल फारिग अन अल उकुबा सुल्तानुल तारिकीन हमीदुद्दीन अल सूफी"<sup>2</sup> सूफी हमीदुद्दीन नागौरी का जीवन बहुत ही साधारण था। एक पादर बीधा करते थे तथा दूसरी शरीर पर पड़ी रहती थी। छ्वाजा हमीदुद्दीन किसी भी प्राणी की हत्या करना पाप समझते थे। इसीलिए गोस नहीं खाते थे। अपनी पालतू गाय का दूध पिया करते थे। इनकी निर्धनता को देखकर नागौर के गवर्नर ने इन्हें शासन की ओर से कुछ भूमि तथा धन उन्हें ले लेने का आग्रह किया, जिसे सूफी हमीदुद्दीन नागौरी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया -

"मेरा तरीक़ अमारत नहीं मूहबत है"

॥मेरा नियम स्वयं को धनी बनाना नहीं, परन ईश्वर की सृष्टि में सभी प्राणियों से प्रेम करना है॥" ।

1- अलबास्त अखियार ॥उर्दू अनुवाद॥ पृष्ठ 67

2- यही



साथ ही कहा कि मेरे सम्प्रदाय के किसी भी सूफी ने इस प्रकार की कोई वस्तु ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। मेरे लिए केवल एक बीघा भूमि पर्याप्त है।

सूफी हमीदुद्दीन नागौरी ने अपने शिष्यों को भी यह आदेश दिया था कि वे कदापि मीस न खाया करें और मेरी मृत्यु के उपरान्त मेरी आत्मा की शान्ति के लिए जो भोजन तैयार कराएँ उसमें मीस न हो। उनका कहना था कि कभी कुसाई की दुकान पर मीस लेने न जाओ। यदि तुम मीस ख़रिद कर लाये तो वह मीस बिक जाने पर पुनः दूसरे पशु की हत्या कर देगा।

सूफी हमीदुद्दीन नागौरी को उच्च कौटि का धार्मिक ज्ञान था। शरीअत [इस्लामी विधान] के सम्बंध में उनका ज्ञान अद्वितीय था। सूफी हमीदुद्दीन नागौरी ने अपने जीवन काल में ही अपना उत्तराधिकारी अपने पौत्र शेख फ़रीदुद्दीन मुहम्मद को नियुक्त कर दिया था क्योंकि उनके पुत्र शेख अज़ीज़ुद्दीन का देहान्त हो चुका था। सूफी हमीदुद्दीन नागौरी का देहान्त एक लम्बी आयु के पश्चात् 29 रबीउल तानी सन् 673 हिजरी /पहली नवम्बर 1274 ई० को हो गया और उन्हें नागौर नगर में दफना दिया गया।

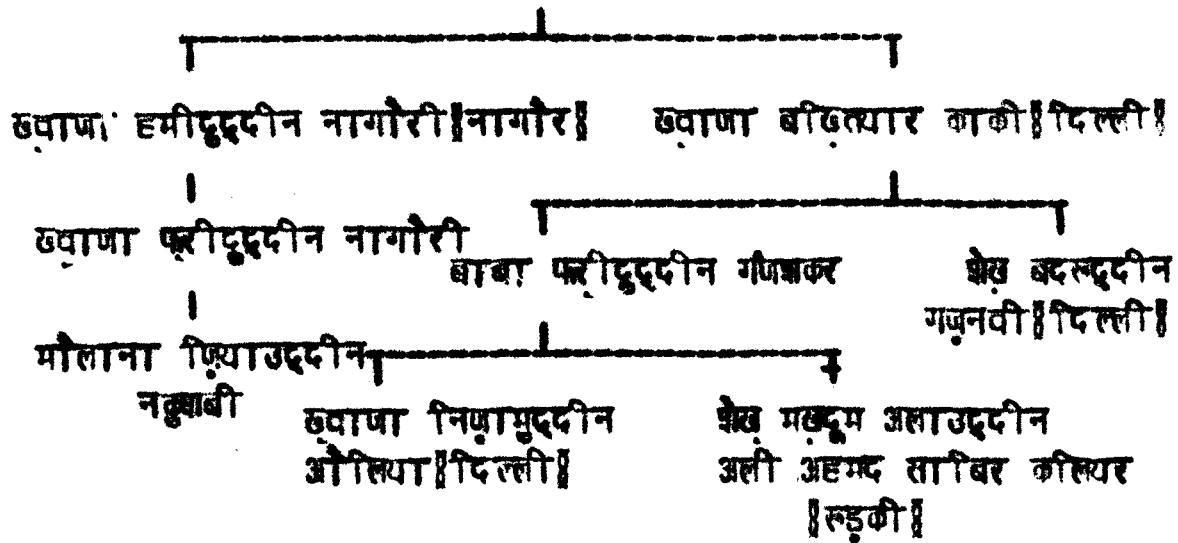
सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ ख़ाधा के परिवार से बड़ी श्रद्धा रखता था। उसने शेख फ़रीदुद्दीन को दरबार में उच्च आसन पर आसीन किया था। शेख के वीरों को राजस्थान में बड़े-बड़े उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया था। सन् 1327-28 ई० के लगभग सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ ने अपनी पुत्री बीबी रास्ती का विवाह शेख फ़रीदुद्दीन

नागौरी के पौत्र शेख ~~फ़रीद~~ तुल्लाह बिन शेख आहमदुद्दीन के साथ कर दिया था । सुल्तान के परामर्श पर नव दम्पति नागौर के निकट देह में जाकर निवास करने लगे थे । क्यों कि सुफी हमीदुद्दीन के अधिकांश वंशज शासन एवं प्रशासन से सम्बन्धित हो गये थे इसीलिये विविध सम्प्रदाय को नागौर में पुनर्स्थापित करने का श्रेय बाबा फरीद के पुत्र शेख खीर के शिष्य तथा सुफी हमीदुद्दीन नागौरी के वंशज ख्वाजा हुसैन नागौरी को जाता है, जिन्होंने ग्रामीण जीवन व्यतीत करते हुये नागौर तथा अजमेर में रहकर शिक्षा - दीक्षा कार्य सम्पन्न किया ।

सोलहवीं शताब्दी में मेवाड़ तथा मारवाड़ से उठी राजपूत शक्ति नागौर के इस सुफी दरबार को नष्ट भष्ट करना चाहती थी, परन्तु ईश्वर की कृपा से असफलता को प्राप्त हुई । तत्पश्चात् नागौर महान सुफी सन्तों का गढ़ बन गया जिससे उत्तेजित होकर शेख अबुल फ़जल के दादा और शेख मुबारक के पिता शेख खिज़्र ने नागौर में निवास करने की ठान ली और वहीं जाकर स्थायी रूप से निवास करने लगे । परन्तु शेख फ़रीदुद्दीन नागौरी के शिष्यों में मोलाना फ़ियाउद्दीन नकुशबी अधिक प्रसिद्ध हैं जिन्होंने विविध सम्प्रदाय की शिक्षाओं को व्यवस्थित ढंग से जन - साधारण तक पहुँचाया ।

अब हम ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की आध्यात्मिक वंश परम्परा को इस प्रकार दर्शा सकते हैं -

छवाणा कुतुबुद्दीन चिश्ती !अजमेर!



चिश्तिया सम्प्रदाय की उन्नति की घाम सीमा तक पहुँचाने, भारत वर्ष में इस्लाम धर्म का प्रचार व प्रसार करने, भारतीय जनता को सदाचार तथा नैतिकता का पाठ पढ़ाने में जो कार्य बाबा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के शिष्यों द्वारा सम्पन्न हुआ है वह अद्वितीय एवं प्रशस्तनीय है। कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के शिष्य बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर थे। बाबा फरीदुद्दीन गंज शकर के दो शिष्यों हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया और शेख मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर थे, जो अपने समय के उच्च कोटि के सूफी साधक थे। इनके द्वारा चिश्तिया सम्प्रदाय का कार्य गंगा-जमनी धाराओं की भीति दो भिन्न रूप धारण करके प्रवाहित होता रहा। इन दोनों महान सूफियों के नाम पर चिश्तिया सम्प्रदाय के दो उप-सम्प्रदाय अस्तित्व में आये। इनमें से एक जिसका मुख्य केन्द्र दिल्ली में था, छवाणा निज़ामुद्दीन औलिया के द्वारा परमोत्कर्ष को पहुँचा तो दूसरा रङ्गुकी नगर के निकट कस्बा कलियर में मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर के द्वारा जन-साधारण को आध्यात्मिक

लाभ पहुँचाता रहा है । दिल्ली की उपशाखा का नाम उसके प्रधान सूफी हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के नाम पर "निज़ामिया" तथा कलिया की उपशाखा का नाम उसके प्रधान सूफी मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर के नाम के साथ "साबिरिया पिप्रियतया" पड़ा । इन दोनों महान विभूतियों का जीवन-परिचय आगे सीधे रूप में देने का प्रयास किया जायेगा ।

### सुल्तानुल मन्शायु हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया महबूब-ए-इलाही =====

जब से तुर्कों ने भारत वर्ष पर विजय प्राप्त करके दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया तभी से बदायूँ इस्लामी शिक्षा-दीक्षा का एक केन्द्र बन गया था । तभी से बदायूँ में बड़े-बड़े विद्वान धर्मनिष्ठ और धर्मात्मा अधिक संस्था में निवास करके इस्लाम धर्म का प्रचार व प्रसार करने में संलग्न हो गये थे । यों तो इस्लाम धर्म के अस्तित्व में आने के समय से ही भारत वर्ष के प्रत्येक नगर में न्यूमाधिक मुसलमान पाये जाने लगे थे, परन्तु सुल्तान इल्तुत मिश की गवर्नरी के काल में बदायूँ में ऐसे लोगों का जमघट प्रारम्भ हो गया था जो बड़े ही महात्मा एवं पुण्यात्मा थे । इसका मुख्य कारण इल्तुत मिश का इन विभूतियों के प्रति असीमित श्रद्धा एवं आदर सरकार ही था ।

सन् 1209 ई० के आस-पास बुखारा के सैयदों का एक परिवार जो अपने आधार-विचार के आधार के आधार पर सम्मानित था, बुखारा से लाहौर आ गया था । कुछ समय लाहौर में निवास करने के पश्चात् यह परिवार बदायूँ को प्रस्थान कर गया । बदायूँ आने वालों में हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के दादा सैयद अली थे जो अपने चचेरे भाई सैयद अरब के साथ बदायूँ आये थे । हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया का जन्म बदायूँ में

सन् 636 हि० / 1238 ई० में हुआ था इनके पिता का नाम सैयद अहमद था । जब हज़रत निज़ामुद्दीन की आयु पाँच वर्ष की थी, तभी इनके पिता सैयद अहमद बुखारी का निधन हो गया था । छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की माता का नाम बीबी जुलैखा था जो बड़ी शिक्षित एवं धर्मीनष्ठ महिला थी । अपने पुत्र की शिक्षा-दीक्षा का भार उन्होंने अपने कंधों पर ले लिया था और उसका पूर्ण उत्तर दायित्व के साथ निर्वह किया । छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की माता ने अपने पुत्र की शिक्षा एक महान् विद्वान एवं क़ारी शादी मुक़री के द्वारा करवाई । यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा तो इनकी माता ने इन्हें घर पर ही दी थी । दूसरे शिक्षक मौलाना अलाउद्दीन उसुली थे जो एक बड़े सूफ़ी सन्त थे । छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया ने श्रेष्ठ अबुल हसन अहमद बिन मुहम्मद की एक फ़िज़्ज़ "मुहतासिल कुक़री" का अध्ययन भी किया ।

सन् 1253 ई० में छ्वाजा को पगड़ी बांधी गई जो उस समय एक स्नातक होने का प्रमाण था । जब छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया ने फ़िज़्ज़ की पुस्तक "मुहतासिल कुक़री" का अध्ययन समाप्त कर दिया तो इनके गुरु मौलाना अलाउद्दीन उसुली ने कहा कि अब दस्तार [पगड़ी] बांधो । अपने गुरु की आज्ञा पाकर छ्वाजा निज़ामुद्दीन अपनी माता के पास आये और अपने गुरु के आदेश को वह सुनाया । उत्तर में उनकी माता ने स्वीकृति देते हुए कहा कि विनित्त होने की आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं इसका प्रबन्ध कर दूंगी । अतः रुई ख़रीद कर कतपायी और झीघ्र ही पगड़ी तैयार करके दे दी गई । पगड़ी की रस्म के इस उत्सव में छ्वाजा निज़ामुद्दीन की माता ने प्रसिद्ध विद्वानों एवं धार्मिक निष्ठावान व्यक्तियों को आमंत्रित किया । सर्व प्रथम छ्वाजा अली मुरीद श्रेष्ठ जलालुद्दीन तबरेज़ी ने पगड़ी का

एक पेघ बँधा तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह ने उन्हें विभिन्न प्रकार से आशीर्वाद दिया । पगड़ी की रस्म के समय छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की आयु सोलह वर्ष की थी ।

पगड़ी की रस्म सम्पन्न होने के पश्चात् छ्वाजा निज़ामुद्दीन अपनी बहन तथा माता को साथ लेकर दिल्ली पधारे । दिल्ली आने का उद्देश्य आभ्यान्तर ज्ञान की पिपासा को शान्त करना था । अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिये सर्वप्रथम छ्वाजा का सम्पर्क मौलाना अम्सुद्दीन छ्वारिण्मी से हुआ । मौलाना छ्वारिण्मी की विद्वता के कारण ही बलबन दरबार में इनको अधिक आदर सम्मान प्राप्त था ।

छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया दिल्ली में हिलाल तश्तदार की एक मसजिद के नीचे एक हज़रे में निवास करते थे । उनके निकट ही छ्वाजा फ़रीदुद्दीन गंज शंकर के अनुष श्रेष्ठ नज़ीबुद्दीन मुतवाक़िल निवास करते थे । निकटता का लाभ उठाते हुए छ्वाजा निज़ामुद्दीन अधिकतर उनसे भेंट करने जाया करते थे । उन्हीं के द्वारा बाबा फ़रीद की विद्वता व साधना का ज्ञान छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया को प्राप्त हुआ । परिणाम यह हुआ कि छ्वाजा निज़ामुद्दीन की हार्दिक इच्छा बाबा फ़रीद के दर्शन करने की हुई । हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया को यद्यपि बाबा फ़रीद से प्रेम उस समय से ही हो गया था जब उनकी आयु केवल बारह वर्ष की थी । बाबा फ़रीद की प्रशंसा छ्वाजा निज़ामुद्दीन एक ऐसे व्यक्ति के मुँह से सुन चुके थे जो उनकी संगति में रह कर बढ़ाया आया था । उसी समय छ्वाजा निज़ामुद्दीन बाबा फ़रीद के नाम को हृदय में धसा चुके थे ।

फिर क्या था आप सन् 655हि० / 1257 ई० में अजोधन [पाक-पहन] चले ही गये और बाबा फ़रीद गंज शंकर की सेवा में उपस्थित हुये ।

हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया एक लम्बे समय तक उनके सम्पर्क में अजोधन में निवास करते रहे । बाबा फ़रीद ने उनकी साधना, सेवा तथा सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर न केवल अपना शिष्य बनाया परन्तु कुछ समय पश्चात् उन्हें ख़िलाफ़त भी प्रदान कर दी । हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया जब तक अजोधन में रहे तब तक लंगर खाने में भोजन बनाने का कार्य स्वीकृत करते रहे । एक दिन नमक न होने के कारण आपने उधार का नमक भोजन में डाल दिया था । जब यह भोजन फ़रीद गीज शहर के सम्मुख लाया गया तो उन्होंने पहला कौर उठाया ही था कि उधार के नमक का ज्ञान उन्हें हो गया । उन्होंने तुरन्त ही कौर हाथ से छोड़ दिया और "बूए असराफ़ मी आयद" [इसमें अपव्यय की गंध आती है] और उपदेश दिया कि दरवेशों के लिये कर्ज़ से मृत्यु भली है । ये शब्द सुनकर हुवाजा निज़ामुद्दीन ने उसी क्षण प्रण किया कि भविष्य में अब इसको पुनः नहीं दुहराऊँगा । बाबा फ़रीद ने उसी समय ईश्वर से प्रार्थना की कि हे ईश्वर मेरा निज़ाम तुझसे जो माँगे, प्रदान कर कहते हैं कि ईश्वर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । उसी समय से हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया को महबूब इलाही [ईश्वर का प्रिय] पुकारा जाने लगा है ।

जिस समय हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया अजोधन में श्रेष्ठ कबीर बाबा फ़रीद के शिष्य हुये उस समय उनकी आयु केवल बीस वर्ष थी । अपने पूरे जीवन काल में हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया केवल तीन बार अजोधन पधारे थे । तीसरी बार जब हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया अजोधन पधारे तो एक दिन [25 ज़मादी उल अख़्ख़ल शुक्रवार के दिन] श्रेष्ठ कबीर बाबा फ़रीद ने अपना मुखस्ताव निज़ामुद्दीन के मुख में डाल कर यह आदेश दिया कि क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ करो । उसी समय हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया को अपना ख़लीफ़ा भी नियुक्त किया । ख़िलाफ़त का

प्रमाण पत्र देते हुये आज्ञा दी कि सर्वप्रथम हांसी जाकर मौलाना जमालुद्दीन को तथा दिल्ली में काज़ी मुन्तज़िब को अवश्य दिखा देना ।

साथ ही आर्शीवाद देते हुये कहा - "तुम एक छायादार दरख़्त होगे जिसके साये में अल्लाह की मख़लूक आराम पायेगी । इस्तेआदाद की तरफ़ी के लिये मुजाहिदा करते रहना" ।

॥ तुम एक छायादार वृक्ष का रूप ले लोगे जिससे ईश्वर की सृष्टि के प्राणी सुख प्राप्त करेंगे । तुम अपने तमस्वी जीवन को उन्नत बनाने के लिये सदा प्रयास करते रहना । ॥

हम देखते हैं कि शेख कबीर का आर्शीवाद अक्षरशः सत्य हुआ । हिन्दुस्तान में कोई ऐसा सूफ़ी नहीं हुआ जिसके सम्प्रदाय ने इतनी अधिक संख्या में लोगों को आकर्षित किया हो । अपने खिलाफ़त के प्रमाणपत्र को लेकर जब छ्वाजा निज़ामुद्दीन हांसी आये तो मौलाना जमालुद्दीन ने उसे पढ़कर कहा -

"सुनाये जहाँ रा हज़ारों सिपास  
कि गौहर सुपुर्दा बगौहर ज़नास"<sup>2</sup>

॥ हे ईश्वर तू ही प्रशंसा के योग्य है कि तूने एक अनमोल मोती को एक जौहरी के ही हाथों समर्पित कर दिया । ॥

छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया हांसी से दिल्ली पहुँच गये और जन साधारण से लेकर जन विद्वेष तक को नैतिकता एवं सदाचार का पाठ

1- "तारीख़ दावती अज़ीमत" मौलाना अबुल हसन अली नदवी पृष्ठ 67

2- वही पृष्ठ 67



पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया । आपकी सभा में निर्धन तो निर्धन बादशाह भी आने की अभिलाषा रखते थे । सहस्रों मनुष्यों को आपके लंगर खाने से भोजन कराया जाता तथा जो भी व्यक्ति आपसे अपना कष्ट बताता तो उसकी आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता भी की जाती थी । आपका नियम था कि जब तक सभी को भोजन न करा दिया जाता तब तक आप न करते थे । आपके भोजन में जौ की रोटी तथा उबली हुई तरकारी हुआ करती थी जबकि अतिथियों को अच्छे प्रकार का भोजन कराया जाता था कभी-कभी तो आप रो भी पड़ते थे । आप कहा करते थे कि न मालूम कितने ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने भोजन नहीं किया होगा ।

अणोधन से आने के पश्चात् हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया ने यथीष शेष जीवन दिल्ली में व्यतीत किया परन्तु स्थायी रूप से गुयासपुर<sup>1</sup> में ही निवास किया । हुवाजा निज़ामुद्दीन औलिया गुयासपुर-निवास से पूर्व दिल्ली और उसके बाहर अनेक आवास ग्रहण करके छोड़ चुके थे । एक समय तो उनके मीस्तक में यह विचार आया कि अमीर तुसरो की ननिहाल पीठ्याली जाकर निवास किया जाये । परन्तु ईश्वर को तो कुछ और ही स्वीकार था । गुयासपुर में निवास करके हुवाजा जो हित जन साधारण का कर सकते थे, कदाचित किसी दूसरे स्थान से यह सफलता पूर्वक सम्भव न होता । इसका कारण यह था कि दिल्ली देश की राजधानी थी और पूरे देश के मनुष्यों के साथ-साथ विदेशी मनुष्यों को भी दिल्ली आकर्षण का

1- उस समय गुयासपुर मुख्य नगर दिल्ली से लगभग तीन मील के फासले पर था जहाँ घाट, छः मकान ही बने हुये थे और सामान्यतः इस स्थान पर सन्नाटा छाया रहता था । हुवाजा के आने के पश्चात् यह स्थान दिन प्रतिदिन गुन्जान होता चला गया ।

केन्द्र बन चुकी थी । छ्वाजा के द्वारा अनेक आवासों के परिवर्तन करने का कारण यह था कि छ्वाजा एकान्त स्थान पसन्द करते थे जहाँ वे ईश्वर की आराधना निर्विघ्न रूप से कर सकें । गयासपुर में स्थायी निवास से सम्बन्धित एक घटना भी घटी थी । छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया के पास एक एक अति सुन्दर परन्तु निर्बल तथा दुबला पतला एक युवक आया और उसने कहा -

“ओ रोज़ कि महशुदी नमी दानिशाती  
कि अन्गुशत नुमायी जहाँ स्वाही शुद”।

॥ जिस दिवस ईश्वर ने आपको चन्द्र बनाया था, उसी दिवस यह भी ॥ समझना चाहिये था कि समस्त सैतार की उंगलियाँ आपकी ओर उठेंगी ॥

साथ ही उसने यह परामर्श दिया कि सच्चा दरवेश वही है जो संसार में रहकर और जनसाधारण का मार्ग-दर्शन करते हुये ईश्वर ध्यान में मग्न रहे और वही उच्च साहस है ।

इस प्रकार गयासपुर में आजीवन निवास किया और लापार, मणबर, एवं संकट ग्रस्त जनता के दुखों का निवारण तन-मन-धन से करते रहे । यही कारण था कि देश-विदेश से आने वालों का ऐसा जमघट लगा कि सुनसान क्षेत्र गयासपुर की शोभा और पहल पहल ने राजधानी की पहल-पहल एवं जगमगाहट को न केवल कम कर दिया वरन् सुल्तान और शहजादे भी इस फ़कीर की राजधानी गयासपुर की ओर इस लालसा से देखा करते थे कि कभी छ्वाजा के दर्शन हो ही जायें तो हम स्वयं को सौभाग्यशाली अनुभव करें । इसमें कोई भीसन्देह नहीं था । छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया के स्थायी रूप से दिल्ली के समय में पीय सुल्तान दिल्ली के राजसिंहासन पर विराजमान हुये थे । उनमें से सभी की वही हार्दिक

इच्छा रही कि छ्वाजा हमारे महल में पधार कर हमें अनुग्रहीत करें, परन्तु छ्वाजा के स्वाभिमान ने कदापि इसे स्वीकार नहीं किया। गुयासपुर का यह फकीर वह था जो खुद जो कि रोटी-जल मग्न करके खाने योग्य बनाकर खाता था और अपने दस्तर छ्वाजा पर हजारों मनुष्यों को स्वादिष्ट एवं पौष्टिक भोजन कराता था। यह तो अवश्य देखा गया। था कि सुल्तानों की नगरी से लोग खाली हाथ आते थे परन्तु इस फकीर की झोंपड़ी से अपना दामन सदैव भ्रू कर ले जाया करते थे। "माले सुफी सबील अस्त" सुफी का धन जलशाला के समान है के अनुसार कौन ऐसा था जिसकी आर्थिक पिपासा यहाँ आकर शान्त नहीं जाती हो। धनी एवं निर्धन ऊँच तथा नीच कुलीन एवं कमीन, अनपढ़ एवं विद्वान, देशी तथा विदेशी सभी को उनका वीरिष्ठ भाग प्राप्त हो जाता था। यह सुल्तानों का दरबार न था जहाँ लोग आने जाने में भय खाते थे। यह तो फकीर की झोंपड़ी थी जहाँ रोता तो आता था परन्तु जाता हँसकर था। सारांश यह है कि न्युनीयक निर्धनों का भाग्य अवश्य जाग उठा था। जैसा कि मौलाना मनाज़िर हसन गीलानी ने अपने पुस्तक "निज़ामे तालीम" में लिखा है।

"बल्कि इन्हीं के जरिये से गुराबों तक भी वह निअमते पहुँच जाती थी निका नाम भी उस ज़माने के गरीबों ने शायद न सुना हो।"

इस प्रकार छ्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया अपने जीवन काल में प्राणी मात्र की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकताओं को अपनी शक्ति भ्रू पूर्ण करते हुये इस संसार से चालीस दिन तक निरन्तर रोगग्रस्त रहकर 18 रबीउल आखिर सन् 725 हिजरी। 3 अप्रैल सन् 1325 ई0 को प्रातः काल सूर्योदय के पश्चात् श्रेष्ठ का निधन हो गया और छुले मैदान में उन्हें दफना दिया गया। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक ने बाद में गुम्बद का निर्माण कराया आपने सम्पूर्ण जीवन

ब्रह्मपर्य के साथ व्यतीत किया था इसलिये आपकी कोई सन्तान नहीं थी । आपके सिलसिले के कार्य को आगे विवर्धित करने का श्रेय आपके शिष्यों को पहुँचता है जिन्होंने अपने पीर नाम पर अपने सिलसिले का नामकरण "निज़ामी सिलसिला" किया और इसी के माध्यम से ख्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया की वैचारिक एवं आध्यात्मिक धारा आगे भी प्रवाहित होती रही ।

यद्यपि आपकी शिष्य-संख्या अति विस्तृत है तथापि यहाँ उन्हीं प्रमुख शिष्यों के नाम का उल्लेख किया जायेगा जिन्होंने निज़ामी सिलसिले को आगे बढ़ाने में पूर्ण योगदान दिया था है । इस सिलसिले के अनेक सन्त अपनी दृढ़ आध्यात्मिक परंपरा को लेकर देश के कोने-कोने में घूमे और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार अपने मत को प्रचारित रूप प्रसारित करके अपने सिलसिले को अताबिद्यों तक जीवित रखा है । यद्यपि इस सिलसिले के सन्त आज भी भारत वर्ष में यत्र-तत्र पाये जाते हैं, परन्तु उनमें आध्यात्मिकता के वे तत्त्व एवं लक्षण अब दृष्टि गोचर नहीं होते जो कभी अनेक गुप्तों में पाये जाते थे । सारांशतः हम यह कह सकते हैं उत्तरोत्तर इस सिलसिले में आध्यात्मिक अवनीति होती चली जा रही है और उसका स्थान दोग एवं आठम्बर पूर्ण जीवन ने ले लिया है । यही कारण है कि कभी जिस सिलसिले की ओर जन समुदाय उमड़ा पड़ा करता था, कालान्तर में उसकी ओर से उदासीनता प्रतीक होता है । यदि सिलसिले के सन्तों की यही नीति रही तो सम्भव है कि भविष्य में केवल नाम ही नाम सुनने को मिले, काम के दर्शन कदापि नहीं होंगे । सिलसिले की इस अवनीति का उत्तर दायित्व सिलसिले के उन्हीं सन्तों पर है जो आज गद्दी-आसीन तो हैं परन्तु अपने पोषण के लिये, इनकी खानकाहों में कभी हताश मानव को सान्त्वना प्राप्त होती थी परन्तु आज केवल छल, कपट, लूट और खसोट । इसके अलावा और कुछ भी नहीं ।

[illegible]

हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर कलियरी

=====

जिस प्रकार विविधता मिलीसिले के अन्य सूफी सन्तों का जीवन वृत्त ऐतिहासिक दृष्टि कोण के आधार पर प्राप्त होता है उस प्रकार अलाउद्दीन अली अहमद साबिर का जीवन वृत्त ऐतिहासिक आधार पर प्राप्त नहीं होता । "सीयस्ल<sup>1</sup> औलिया" नामक पुस्तक में एक "सूफी अली साबिर " के सम्बन्ध में कुछ विवरण अवश्य लिखी हैं, "अख़्बास्ल<sup>2</sup> अख़ियार" नामक पुस्तक के लेखक शेख़ अब्दुल हक़ मुहम्मिद्दस देहलवी का कहना है कि "यह यकीन से नहीं कहा जा सकता कि ये [विवरण] इन्हीं के मुतालिफ़ हैं या किसी और के" । परन्तु सत्तरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में लिखी गई धार्मिक पुस्तकों में इनसे सम्बन्धित लेख बहुत ही विस्तार के साथ पाये जाते हैं । फिर भी एक श्रंका अवश्य बनी रहती है और वह यह कि इन विस्तार पूर्वक लिखे गये अली अहमद साबिर से संबंधित वर्णनों का आधार क्या है ? और जो विवरण लिखी गई हैं वे ऐतिहासिक आधार पर किस सीमा तक सही हैं ? ऐसी स्थिति में विश्वास के साथ तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता । फिर भी प्रस्तुत जीवन वृत्त लिखने में बड़ी सतर्कता के अन्तर्गत कार्य किया गया है ।

जन्म -

---

हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर का जन्म 19 रबीउल अठव्वल सन् 592 हिजरी दिन बृहस्पतवार को क़स्बा क़थ्थाल ज़िला मुल्तान में हुआ था ।

नाम -

---

आपका नाम अली अहमद था । बाद में आपको मख़दूम और साबिर आदि के विशेषणों के साथ पुकारा जाने लगा । अलाउद्दीन आपकी उपाधि थी ।

1- सीयस्ल औलिया पृष्ठ 185

2- अख़्बास्ल अख़ियार पृष्ठ 69

इस प्रकार आपका नाम अनेक विशेषणों और उपाधि से संयुक्त होकर अलाउद्दीन अली अहमद साबिर अथवा मखदूम अलाउद्दीन अली अहमद साबिर हो गया, जो आज तक प्रसिद्ध है और लोग आपको इसी सम्पूर्ण नाम के साथ स्मरण करते हैं। यों आपको संक्षिप्त रूप में लोग मखदूम साबिर कहकर भी पुकारते हैं।

### माता-पिता तथा वंश वृक्ष -

हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर की माता का नाम बीबी हाजरा था परन्तु जमीला खातून के नाम से प्रसिद्ध थीं। हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर के पिता का नाम सैयद अबदुल्ला था परन्तु इनके पिता का नाम अबदुरहीम<sup>1</sup> भी कहा जाता है। हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साबिर हज़रत इमाम जाफ़र की सन्तान में से थे। वंश वृक्ष निम्नलिखित है<sup>2</sup> -

सैयद अली अहमद साबिर  
 |  
 सैयद अबदुल्ला  
 |  
 सैयद फ़ादुल्लाह  
 |  
 सैयद नूर मुहम्मद  
 |  
 सैयद अहमद  
 |  
 सैयद गयासुद्दीन  
 |  
 सैयद बहाउद्दीन  
 |  
 सैयद दाऊद  
 |  
 सैयद मोहम्मद इस्माईल  
 |  
 इमाम नासिर मुसा काज़िम  
 |  
 इमाम जाफ़र सादिक

1- तज़किरतुल ओलिया हिन्द व पाक - पृष्ठ 78

2- रितासत इन्साब - मुल्ला वज्जिद्दीन अक़हाबी गोयामवी

इमाम मुहम्मद बाक़र  
 |  
 सैयदना इमाम ज़ैनुल आबिदीन  
 |  
 सैयदना इमाम हुसेन अलैहिस्सलाम  
 |  
 हज़रत असदुल्लाह अली बिन अबी तालिब

इस प्रकार हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब पन्द्रहवीं कड़ी में जाकर हज़रत अली ख़लीफ़ा चतुर्थ से मिल जाते हैं ।

हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब के पूर्वजों में से सैयद फ़तुहल्लाह ने बनी अब्बास के अत्याचारों से तंग आकर अपना पैत्रिक निवास स्थान त्याग दिया और हिरात में आकर बस गये और हिरात ही में तपस्वी जीवन व्यतीत किया । इसके साथ ही हिरात निवासियों को धार्मिक और सदाचर की शिक्षा देते रहे । इन्हीं के पुत्र सैयद अब्दुल्लाह ख़िलजी-शासन काल में मुल्तान आ गये थे । उस समय मुल्तान के अजोधन नामी क़स्बे में शेख़ फ़रीद अपने पवित्र एवं निःस्वार्थ जीवन के आधार पर जन समुदाय में आदर का पात्र बने हुये थे । उनकी प्रशंसा और प्रसिद्धि सुनकर सैयद अब्दुल्लाह उन्हीं के निकट ठहर गये । शेख़ फ़रीद क्योंकि उनसे पूर्व परिचित थे इसलिये अपनी बहन हाजरा का निकाह सैयद अब्दुल्लाह के साथ कर दिया था । बाबा फ़रीद की वंशावली इस प्रकार है -  
 शेख़ फ़रीदुद्दीन ग़ज़ शहर पुत्र क़ाज़ी शेख़ ज़मालुद्दीन सुलेमान पुत्र क़ाज़ी ज़ुबैर  
 पुत्र शेख़ मुहम्मद अहमद पुत्र शेख़ यूसुफ़ पुत्र शेख़ शहाबुद्दीन उर्फ़ फ़र्रुख़ाह काबुली  
 पुत्र नसीर फ़ख़रुद्दीन महमूद पुत्र शेख़ सुलेमान पुत्र शेख़ मसूद पुत्र शेख़ अब्दुल्लाह  
 दाइज़ अल असगर पुत्र दाइज़ अल अकबर अबुल फ़तह पुत्र शेख़ इसहाक़ पुत्र शेख़ नासिर  
 पुत्र शेख़ अब्दुल्लाह पुत्र अमीरुल मौमिनीन हज़रत उमर फ़ारुक़ ख़लीफ़ा द्वितीय ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब के पिता यदि हज़रत अली की सन्तान में से थे तो आपकी माता हज़रत उमर फ़ारुक़ की सन्तान में से थीं ।



अपने माता और पिता की सम्पूर्ण छाया हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब के व्यक्तित्व पर पड़ी थी । आप अपने बचपन से ही बड़े गम्भीर रहते थे । उपवास की स्थिति यह थी कि आप एक दिन दूध पीते थे और दूसरे दिन नागा कर दिया करते थे । जैसे-जैसे आपकी आयु बढ़ती गई आप अति गम्भीर होते चले गये । बहुत अल्प मात्रा में भोजन लिया करते थे और बहुत कम विभ्राम किया करते थे । अधिकांश समय भक्ति में व्यतीत करते थे । आपको जब भी खिन्ना सताती तो धरती पर ही सो जाया करते थे ।

आपकी आयु जब केवल सात वर्ष की थी तभी आपके पिता का देहान्त हो गया । कुछ समय पश्चात आपकी माता जी इन्हें साथ लेकर हिरात से अजोध्या [पाक पदटन] चली आई और अपने लाठले को अपने भाई शेख फ़रीद की निगरानी में छोड़ दिया । अगले तीन वर्ष में बाबा शेख फ़रीद ने सांसारिक ज्ञान और धार्मिक शिक्षा में परिपूर्ण कर दिया । इसके पश्चात शम्शाल की पच्चीसवी तिथि सन् 603 हिजरी को अलाउद्दीन अली साहिब को बाबा फ़रीद ने अपना आध्यात्मिक शिष्य बना लिया । तत्पश्चात आपकी माता हिरात वापस लौट गई । बाबा फ़रीद ने आध्यात्मिक शिक्षा में पारंगत करने के पश्चात अपने लंगर खाने का प्रबन्ध इनके उत्तरदायित्व पर छोड़ दिया, जिसे इन्होंने बड़ी सफलता के साथ पूरा किया । इस लंगर खाने से बिना धार्मिक भेद-भाव के सभी को नित्य-प्रति भोजन वितरित किया जाता था ।

तीन वर्ष पश्चात जब आपकी माताजी फिर आई तो उन्होंने अपने बेटे अली अहमद साहिब की शादी के लिये बाबा फ़रीद की बेटी मांगी । शेख बाबा फ़रीद ने अपनी पुत्री ख़दीजा बेगम का निकाह सन् 613 हिजरी में कर दिया । कहा जाता है कि आप तपस्या में इतने मग्न थे कि अपनी पत्नी को ही न पहचान पायें और उनके तेल के कारण पत्नी का कर्णान्त हो गया । इस हृदय विदारक घटना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि आपकी माताजी का देहान्त मुहर्रम की छठी तिथि सन् 614 हिजरी को हो गया ।

इसके नौ वर्ष पश्चात बाबा फ़रीद ने इन्हें अपना ख़लीफ़ा घोषित करके खिलाफ़त नामा इन्हें दे दिया और देहली में निवास करने को कहा । परन्तु यह आदेश दिया कि देहली जाने से पूर्व शेख जमालुद्दीन हॉसवी के हस्ताक्षर अवश्य करा लें । हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब ने बाबा फ़रीद की आज्ञा का पालन किया और हान्सवी गये परन्तु शेख जमालुद्दीन हान्सवी ने उन्हें देहली जाने से रोक दिया । तत्पश्चात बाबा फ़रीद ने उन्हें कलियर में निवास करने का आदेश दिया । कलियर क़स्बा रुड़की के निकट स्थित है जो उत्तर प्रदेश के एक ज़िले सहारनपुर में है । साहिब साहब कलियर में आकर रहने लगे ।

कलियर नगर को राजा कर्मपाल ने सन् 283 हिजरी में बसाया था । प्रारम्भ में इस नगर का नाम हरिद्वार गढ़ी झुग था । यह गंगा नदी के किनारे लम्बा-लम्बा बसाया गया था । इस नगर में बड़े सुन्दर-सुन्दर मन्दिर थे । राजा कर्मपाल के देहान्त के पश्चात उसके पुत्र राजा विक्रमपाल ने इस नगर की शोभा में और चार घाट लगा दिये । इसी वंश के अनेक राजाओं ने कई शताब्दी तक राज्य किया । जिसके नाम पर इसका नाम कलियर पड़ा, वह कलियाण पाल था ।

इस नगर में सैकड़ों मन्दिर थे जिनमें अनेक देवी देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित थीं, और उन पर पशुओं के साथ-साथ मनुष्यों की भी बलि पढ़ाई जाती थी । सुल्तान कुतुबुद्दीन के आदेश पर क़्यामुद्दीन ने कलियर पर विजय प्राप्त कर ली । और स्वयं शासन करने लगा परन्तु नागा जाति के लोग आये दिन उपद्रव उठाते रहते थे । ऐसी ही स्थिति में अलाउद्दीन अली अहमद साहिब को कलियर में आना पड़ा था ।

कलियर निवास के दौरान आप लोगों को बुरी बातों से टोकते रहे और नैतिकता तथा सदाचार की शिक्षा सदैव देते रहे । आपकी सेवा में हज़रत शमसुद्दीन तुर्क पानीपती आये तो उनको अपना शिष्य और आध्यात्मिक पुत्र घोषित किया और सदा अपने निम्न रहने का आदेश दिया । कुवाजा शमसुद्दीन तुर्क पानीपती हज़रत साहिब की संगति में लगभग 20 वर्ष रहे । तत्पश्चात् गुलाबुद्दीन बलबन की फ़ौज में जाकर नौकरी कर ली । इनके जाने के पश्चात् हज़रत अलाउद्दीन अली अहमद साहिब को देहान्त 12 रबी उल अख़्त सन् 690 हिजरी को हो गया और आपको कलियर ही में दफ़ना दिया गया । शब्द मख़दूम के अक्षरों की संख्या का योग अब्बाद अख़्तज़ की युक्ति के अनुसार 690 ही होता है । इस प्रकार शब्द मख़दूम से आपका मृत्यु सन् भी प्राप्त किया जा सकता है । विधितया तिलीसले की साहिबरी ज़ाखा के आप पूर्वतक हैं । जिसको आगे चलकर बड़ा सम्मान प्राप्त हुआ, जो आज तक जारी है ।

इस सम्प्रदाय के सूफ़ियों में प्रमुख रूप से शेख़ अब्दुल कुसू गंगोही का नाम लिया जाता है, जिन्होंने इस सम्प्रदाय की विचार धारा को जन साधारण में प्रचारित एवं प्रसारित किया । यद्यपि इनकी अनेक रचनाओं के सम्बन्ध में लोगों की धारणा है कि इन्होंने सूफ़ी मत का प्रतिपादन करते हुए समन्वयवाद को प्रोत्साहन दिया है, तथापि इनकी रचनाओं में "अलख़बानी" को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है ।

**6- हिन्दी-सुफ़ी-काव्य में विषय-विचार धारा**

**॥अ॥ सुफ़ी-प्रेम का स्रोत**

**॥ब॥ सुफ़ी-काव्य का उद्भव तथा विकास**

**॥स॥ हिन्दी सुफ़ी-काव्य का उद्भव तथा विकास**

**॥द॥ सुफ़ी काव्य की क्या वस्तु**

**॥ग॥ इनाम्रवी परम्परा के प्रमुख सुफ़ी कविय**

**॥र॥ जायसी की कृतियों में सुफ़ी विचार धारा**

**"हिन्दी सुफी-काव्य में विषती विचार धारा", 'सुफी-प्रेम का स्रोत'**  
 =====

"कल्लज़ीना आम्रु अशद्दी हुब्बन लिल्लाह" । कुरान शरीफ, सूरः बक़रः सूअ 4।  
 "अर्थात् जो ईमान वाले हैं । वे लोग जो रक़ेबराबाद में विश्वास रखते हैं। नबी  
 और पैग़म्बरों पर, उन पर उतरती पुस्तकों पर, तथा फ़रिश्तों पर और प्रलय  
 तथा उसके पश्चात् महा न्याय के दिन पर विश्वास रखते हैं। वे अल्लाह तआला  
 से सर्वाधिकत मुहब्बत ।प्रेम। करते हैं ।"

**"अल्ला हुम्मा इन्नी अस अलौकुअ हुब्बकुअ व हुब्ब मई मुहिब्बोकुअ ।"**

**हदीस ।हिसने हसीन और तिरगिणी।**

"अर्थात् ऐ । अल्लाह मैं तेरी मुहब्बत का सवाल ।चाहना। करता हूँ और उस  
 व्यक्ति की मुहब्बत चाहता हूँ जो तुझसे मुहब्बत।प्रेम। करता है ।"

सर्व प्रथम कुरान शरीफ की सूर : बक़र की उस आयत को उद्धृत किया  
 गया है जिसमें ईश्वर स्वयं उन व्यक्तियों की ओर संकेत करता है, जो ईश्वर  
 और उसके कार्य-क्षेत्र में दृढ़ विश्वास रखते हैं, और उन्हीं के बारे में कहता है  
 कि वे ही मुझसे ।ईश्वर से। सर्वाधिक प्रेम करते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि  
 सुफियों का ईश्वर के प्रति प्रेम-भाव कहीं बाहर से उधार लिया हुआ नहीं है,  
 वरन् उसका स्रोत तीधा कुरान शरीफ से मिलता है ।

दूसरी एक हदीस है जिससे मुहम्मद साहब ।इस्लाम-धर्म के पैग़म्बर।  
 स्वयं ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें ईश्वरीय प्रेम की भिक्षा प्रदान की  
 जाय और उन लोगों से प्रेम की, जो ईश्वर से प्रेम करते हैं । इसमें इस्लाम  
 धर्म के पैग़म्बर मुहम्मद साहब, ईश्वर की ओर प्रेम मार्ग पर अग्रसर होने की  
 प्रार्थना करते हैं ।

उपर्युक्त हदीस इस बात की ओर संकेत करती है कि सच्चे और सदावारी मनुष्यों से भी प्रेम करना चाहिये और सभी को ईश्वर से अनन्य प्रेम करना चाहिये । सूफियों के बारे में यह धारणा, कि सूफियों का यह प्रेम इस्लाम-सम्मत नहीं है, निराधार और अर्थहीन होकर रह जाती है । कुरान शरीफ में एक स्थान पर नहीं अनेक स्थानों पर प्रकारान्तर से ईश्वर से प्रेम करने की बात कही गई है । मुहम्मद साहब की हदीस से इस प्रेम को और अधिक परिपक्वता प्राप्त हो जाती है, कि प्रत्येक प्राणी को उस ईश्वर से प्रेम करना चाहिये साथ ही उनसे भी प्रेम करना चाहिये, जो ईश्वर से प्रेम करते हैं । इस प्रकार प्रेम का बीजारोपण यदि कुरान शरीफ में हुआ है तो उसका वृक्ष-रूप हमें हदीस में दृष्टि गोचर होता है । सूफियों के संसार में उस प्रेम रूपी वृक्ष पर फल लग जाते हैं । जिनका रसास्वादन संसार में प्रत्येक प्राणी करता है, और जीवन लाभ प्राप्त करता है । यही कारण है कि सूफी, ईश्वर को तो अटूट प्रेम करते ही हैं, उससे प्रेम करने वालों से भी प्रेम करते हैं । उनका प्रेम संकुचित मार्ग का अनुगामी नहीं है । वरन् वे सृष्टि के कण-कण में उसी की ज्योति के दर्शन करते हैं । इसी कारण सूफी-जगत में वैर, अलगाव और घृणा के स्थान पर प्रेम, परस्पर सम्पर्क और भाई चारा सर्वत्र पाया जाता है । सूफियों का प्रेम धर्म और देश की सीमाओं के बन्धन से मुक्त होता है । उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सूफी-प्रेम का स्रोत मूल रूप में कुरान शरीफ है और उस स्रोत की धारा हदीस के माध्यम से निरन्तर प्रवाहित हो रही है जिसका पान मन और हृदय से पूरी तन्मयता के साथ सूफी कर रहे हैं ।

सूफी-काव्य का उद्भव तथा विकास :-

मसऊमी नामक इतिहासकार के मतानुसार अफलादूनी विचार धारा को मानने वाले जिन समस्याओं के समाधान में व्यस्त थे, उनमें से एक समस्या यह भी

थी कि जीवात्मा शरीर में है अथवा शरीर जीवात्मा में है । प्रकारान्तर से सुफ़ियों ने भी जीवात्मा को अपने विचार-विनिमय में मुख्य स्थान दिया । जीवात्मा के सम्बन्ध में जहाँ दार्शनिकों ने बुद्धि और ज्ञान का आश्रय लिया, वहीं सुफ़ियों ने उसे पहचानने के लिये प्रेम और भक्ति-मार्ग पर अधिक बल दिया ।

जीवात्मा के सम्बन्ध में मनन करने वालों में सर्व प्रथम एक दार्शनिक है उसके मतानुसार ब्रह्माण्ड की रचना किसी बाह्य सक्रिय सत्ता द्वारा हुई है । ईश्वर और शरीर-जगत के मध्य में जीवात्मा का लोक है । गनुष की जीवात्मा उसी जीवात्मा के लोक का प्रतिबिम्ब है । फ़ारबी [मृ० १५० ई०] ने जगत को दो भागों में विभाजित किया - एक सृष्टि-जगत, और दूसरा आदेश जगत । दिव्य लोक बुद्धि के आदि रूप द्वारा गतिशील है और बुद्धि की रचना ईश्वर ने की है । अबु अली सीना [मृत्यु १०३६ ई०] के मतानुसार बुद्धि और विचार दो विभिन्न सत्ता है तथा जीवात्मा अमर है । ईश्वर में सत्ता और अद्वैतत्व दोनों का योग है जबकि सृष्टि के समस्त पदार्थों में ये दोनों गुण विद्यमान हैं ।

ये दार्शनिक यद्यपि ईश्वर में विश्वास तो रखते थे, परन्तु उनकी विचार शैली अन्य सनातन पन्थी विद्वानों तथा सुफ़ियों को रुचिकर न थी । परिणाम स्वरूप इन दोनों ने मिलकर दार्शनिकों के इस ज्ञानवाद का घोर विरोध किया । नव-अफ़लाक़ूनियों के मतानुसार जीवात्मा अपने आदर्श स्रोत से पृथक् होकर अपने आदि रथ अनंत स्रोत से मिलने के लिये व्याकुल रहती है । इस प्रकार का भाव मुहम्मद साहब की हदीस "प्रत्येक वस्तु अपने मूल तत्व की ओर लौटती है", से प्रवृत्त होता है । जीवात्मा परमात्मा का ही अंश है । प्लेटिनस के मतानुसार आत्मा अभाण्ड है । उस परम ज्योति का आत्मिक समस्त सृष्टि में फैला हुआ है । भक्ति और प्रेम के आधार पर उस ज्योति के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं । सुफ़ियों ने प्लेटिनस के इस रहस्यवाद को अपना

लिया और इस्लामी विधान के साथ उसका सामंजस्य स्थापित कर दिया ।  
सुफी-जगत में इस प्रेमवाद का स्वागत किया । यों इसके संकेत उन्हें कुरान और  
हदीस दोनों में स्पष्ट दिखाई देते हैं । अतः उन्होंने इस भीमत और प्रेम मय  
साधना को कुरान और हदीस का सहारा लेते हुये इस्लामी रंग में रंग लाला ।

सुफियों का यह प्रेम उस परम सत्ता के प्रति निस्वार्थ प्रेम था । इसी  
प्रेम को इन्होंने हकीकी अथवा ईश्वरीय प्रेम करते हैं । उनके हृदय के यही प्रोणे-  
न्मुख उद्गार काव्य के रूप में परिस्फुटित हुये । सुफी जगत में इस प्रकार, सर्व  
प्रथम काव्य की रचना सुल्तान अबु सईद अबुल खैर ११६७-१०४९ ई० ने फारसी  
भाषा में की थी जिसमें ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति थी । फेर अबु सईद अबुल  
खैर के ही समकालीन सुफी कवियों में बाबा ताहिर का भी एक विशेष स्थान  
है । इन्होंने प्रेम की पीर से तड़पकर हृदय की छड़कन को काव्य की पंक्तियों  
के रूप में उजागर किया है । इन्होंने अपने विरह की गाथा बड़ी मर्म स्पर्शी  
भाषा में अभिव्यक्त की है । अपने हृदय के उद्गारों को रुबाई के छन्दों में  
व्यक्त करने वाले सुफी कवियों में ख्वाजा अब्दुल्ला अन्सारी का नाम भी लिया  
जाता है । जिन्होंने सरस एवं सार गीर्णत रुबाइयों के माध्यम से तत्त्वज्ञान की  
अभिव्यक्ति की है । इनकी रुबाइयों में सुफी मत के सिद्धान्तों का प्रतिपादन  
भी हुआ है । अभी तक सुफी कवियों के इन काव्यों में प्रेम-भावना के साथ  
सुफियत का रंग ही झलकता था । हकीम सनाई के समय में आकर सुफी कवियों  
का यह काव्य रहस्यवादी भी हो गया । हकीम सनाई ने अपने काव्य में आत्मा,  
परमात्मा, जीव तथा जगत के सम्बन्ध में गहन विवेचन करके सुफियों में व्याप्त  
बहुत<sup>से</sup> समस्याओं का समाधान भी किया । हकीम सनाई उच्च जोति के भावुक  
सुफी कवि थे । उनकी प्रशंसा में मोलाना अब्दुरहमान जामी ने इस प्रकार  
कहा है -



अन्तार सह बुद्धो सनाई दो पशमे ऊ ।

मा अब पय सनाई ओ अन्तार आमदेम ॥

अर्थात् अन्तार ! फरीदुद्दीन अन्तार ! तो स्वयं आत्मा थे । और हकीम सनाई स्वयं दो नेत्र थे । और हम सनाई और अन्तार के पश्चात् आये हैं ।

इससे तात्पर्य यह है कि इस भावुक जगत के प्रेममय जीवन की आत्मा श्रेष्ठ फरीदुद्दीन अन्तार थे, उस प्रेम मय जीवन के नेत्र हकीम सनाई थे अन्य की गणना इन दोनों के पश्चात् है । अर्थात् सुफियों के प्रेममय जगत में अपने विरहा-कुल हृदय के उद्गारों को काव्य की वाणी देने वालों में यही दोनों अग्रणीय हैं ।

सुफी काव्य-धारा के वेग को और गति प्रदान करने का श्रेष्ठ श्रेष्ठ फरीदुद्दीन अन्तार को है । इनकी प्रशंसा में मोलाना जलालुद्दीन रूमी ने इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं -

हफ्त शहरे खक रा अन्तार गश्त ।

मा हनोज़ अन्दर सुमेयक कूषा रौम ॥

अर्थात् अन्तार ने प्रेम के सात नगरों का भ्रमण कर लिया है । परन्तु हम अभी तक एक गली के मोड़ पर हैं । फारसी सुफी कवियों में सबसे अधिक ग्रंथों की रचना श्रेष्ठ फरीदुद्दीन अन्तार द्वारा हुई है । इनकी रचनाओं में अधिकांश सुफी विचार धार और सदाचार का समन्वय पाया जाता है । इस समन्वय में दार्शनिकता का घुट लाना मोलाना जलालुद्दीन रूमी का कार्य था । मोलाना जलालुद्दीन रूमी अपूर्व प्रतिभा सम्पन्न कवि थे । उन्होंने अपनी दिव्य अनुभूतियों को काव्य की भाषा में व्यक्त किया है । इनके द्वारा रची गई मसनवी के समान दूसरी मसनवी अभी तक रची नहीं गई है । इनकी मसनवी की प्रशंसा में मोलाना अब्दुरहमान जामी ने यों कहा है -

“मसनवी-ए-मोलवी-ए-मानवी  
हस्त कुरआँ दर जुधाने पहलवी”

भावार्थ यह है कि “मोलाना रूग की मसनवी पहलवी भाषा का कुरान है ।

फारसी प्रेम-काव्य-जगत में जिन-जिन महान विभूतियों का नाम लिया जाता है, उनमें से एक है हज़रत शेख़ सादी शीराज़ी । इनकी रचनाओं में गुलिस्तौ और बोस्तौ अधिक प्रसिद्ध हैं । शेख़ सादी को ग़ज़लों का पैग़म्बर पुकारा जाता है । शेख़ सादी के मतानुसार प्रभु का दर्शन केवल वही प्राप्त कर सकता है जो अपने आप को उस पर न्यौछावर कर दे । इसी भाव की अभिव्यक्ति उनके निम्न लिखित कथन से स्पष्ट होती है ।

अज़् ओ बिस् नयामदा ज़ुजानत आरज़ुस्त ।

ज़ुन्नार नाबुरीदा जो ईमानत आरज़ुस्त ॥

॥मवाइज़े सादी॥

अर्थात्-तू ज्ञान के बन्धन से नहीं छूटा, परन्तु तूझे अपने प्रियतम को प्राप्त करने की अभिलाषा है । तूने जनेऊ को तो तोड़ा नहीं ॥बाह्यहम्बर को तो छोड़ा नहीं॥ किन्तु ईमान की ॥धर्म की॥ इच्छा है । यह कैसे सम्भव हो सकता है ।

इसी परम्परा में एक प्रेम-कवि शेख़ ओहदुद्दीन किरमानी भी हुये हैं। इनका देहान्त सन् 1298 ई० में हुआ था । इनकी काव्य कृति का नाम “मिसवाहुल अरवाह” है । इस कृति में शेख़ ओहदुद्दीन किरमानी ने उसी प्रणय धारा को प्रवाहित किया है, जिसमें निमग्न होकर आत्मा अपने प्रियतम को खोजती फिरती है । इनके परम सुन्दर प्रियतम का सौन्दर्य ही है, जो सारे संसार को सुन्दर बनाये हुये है ।

इसी प्रेम मार्ग के यात्री हैं, शेख ईराकी हमदानी । प्रेम ही इनका धर्म था । यही कारण था कि सुफ़ी के कण-कण में इन्हें उसी प्रेम की आभा दृष्टि गोचर होती । तत्कालीन अवस्था में ही ये मुल्तान में आकर शेख बहाउद्दीन के शिष्यों में सम्मिलित हो गये थे मुल्तान में ही इन्होंने काव्य-रचना प्रारम्भ की थी जिसका एक शेर दृष्टव्य है -

ब गेती हर कुजा ददे दिले बुद ।

बहम कर दन्दो इश्क़ नाम करदन्द ॥

अर्थात् संसार में जहाँ कहीं भी दिल का दर्द था, उसे एकत्रित करके उसका नाम इश्क़ [प्रेम] रख दिया गया । मुल्तान से ये दमिष्क चले गये और 78 वर्ष की आयु में सन् 1289 ई० में इनका देहान्त हो गया । इनकी रचनाओं में प्रसिद्ध रचना "लमआत" है जिसमें 27 अध्याय हैं । रचना में आलौकिक प्रेम को उजागर किया गया है ।

इसी परम्परा में प्रश्नोत्तर रूप में लिखी गई एक पुस्तक "गुलशनेराज" है, जिसके रचियता शेख महमूद शिबिशतरी हैं । ये प्रश्नोत्तर सन् 1317 ई० में दो विद्वानों में परस्पर किये गये थे । गुलशनेराज में सुफ़ी-प्रेम की सुख्खतम बातों को छोटी-छोटी चित्तरंजक कथाओं द्वारा स्पष्ट और आकर्षक शैली में अभिव्यक्त किया गया है । "गुलशने राज" से प्रश्नोत्तर का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

मुसाफ़िर यूँ बुअद रहरो कुदामस्त ।

किरा गोयम कि ऊ मदे तमाम अस्त ॥

अर्थात् मुसाफ़िर [साहिल] कौन है ? और किस को कहूँ कि वह मर्दे कायमल [सिद्ध पुरुष] है ।

मुसाफिर औ बुअद कू बग़ुरद दूद ।

ये छुद साफ़ी शब्द घू आतिश अज़ दूद ॥

अर्थात् मुसाफिर वह है । जो शीघ्र ही अपने आप को कुछ निर्मल तथा अवदात बना ले । जिस प्रकार आग धुँसे से अलग हो जाती है उसी प्रकार साधक को भी छुदफरस्ती आदि से अलग हो जाना चाहिये । अर्थात् अपना आपा छो देना चाहिये । इनका देहान्त सन् 1338 ई० में शिबस्तर में हुआ था।

चार प्रसिद्ध मसनवी-रचनाकारों में से एक है शेख औहदी अथवा औह-दुददीन मरागी । इनकी समस्त कृतियाँ काव्य में लिखी गई हैं । इनकी कृतियों में सुविख्यात कृति "जामे जम" है इनके अनुसार समस्त संसार की सुन्दरता, प्रफुल्लता, निर्मलता तथा पवित्रता आदि का अस्तित्व उस परम प्रियतम के ही कारण है -

"ये रोज़ान अज़ लये तु ज़मी ओ जमा हम"

अर्थात् हे ईश्वर, तेरे ही सुन्दर मुख ही सुन्दरता से समस्त पृथ्वी और समस्त पदार्थ सुन्दर हैं। इनकी ग़ज़लों भी अलौकिक प्रेम से परिपूर्ण है -

छाक साराने जहाँ शब्द हिक़ारत मिंगर ।

तु ये दानी कि दरीं गई सवारे बाज़द ॥

अर्थात् संसार के इन छाक सारों [नम्र साधकों] को पृष्ठा की दृष्टि से न देख तुझे क्या मालूम कि इस धूल में कोई सवार [सिद्ध पुरुष ही] हो ।

शेख औहदी मरागी का देहान्त सन् 1338 ई० में मरागा में हुआ था फ़ारसी के प्रसिद्ध प्रेम-कवियों में एक हैं ख़्वाजा शम्सुद्दीन मुहम्मद हाफ़िज़ शीराज़ी ।

इनका जन्म सन् 1320 ई० में श्रीराज में हुआ था । इनकी कृतियों में सुविख्यात कृति इनका दीवान है, जिसमें इन्होंने सूफी-विचार धारा के गूढ़ तत्वों की विवेचना प्रस्तुत की है । इस दीवान का संसार का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । २० जे० आरबेरी ने भी अपनी पुस्तक "कलासिकल पश्चिम लिटरेचर" में हाफिज़ श्रीराजी को फारसी का सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित किया है । गुरु का महत्त्व प्रदर्शित करते हुये इन्होंने अपने दीवान में लिखा है -

ब मैं सज्जादी रंगी कुन गरत पीरे मुगी गोयद ।

कि सालिक बे खबर न बु अद ज़िराहो रस्में मोजिल हा ॥

अर्थात्-यदि तेरा गुरु [पीरे मुगी] तुझसे कहे कि तू अपना गुस्ला [वह दरी या घटाई जिस पर बैठ कर नमाज़ पढ़ते हैं] ज़राब में रंगले, तो तू रंग ले । क्योंकि वह सालिक [प्रेम-मार्ग का साधक] इस मार्ग से बेखबर नहीं है । जिस पर तू क़दम रखने वाला है ।

इसी परम्परा में हाफिज़ श्रीराजी के पश्चात् आते हैं, खेज़ मुहम्मद श्रीरी तबरेज़ी, जिनका जन्म सन् 1350 ई० में और देहान्त 1407 ई० तबरेज़ में हुआ था । इनके काव्य में अद्वैतवाद की विचार धारा प्रवाहित होती है । इनके काव्य में पुनरावृत्त दोष आ गया है । इनके दीवान में लगभग 2300 शेर हैं । इनके पश्चात् आते हैं - आह नियाम-तुल्लाह "वली" । यद्यपि इन्होंने काव्य की रचना की है । परन्तु उच्च काव्य में कविता की कमी है । उसमें एक रसता के अधिक दर्शन होते हैं । इनका देहान्त 1431 ई० में हुआ था ।

फारसी काव्य-जगत में अपना लोहा मनवाने वाले मोलाना नुरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी हैं । इनका जन्म सन् 1414 ई० में खुरासान के प्रसिद्ध नगर जाम के निकट क़स्बा खरिषर्द में हुआ था । इनके पिता निज़ामुद्दीन दश्ती

जाम को छोड़कर खरिज्द में आकर बस गये थे । जाम नगर से सम्बन्ध तथा शेर अल नस्र बिन अबुल हसन जामी के प्रति अटूट श्रद्धा होने के कारण इन्होंने अपना उपनाम जामी रखा था । इन्होंने सम्सामयिक प्रसिद्ध सूफियों की संगति में बैठकर सूफी विचार धारा के गूढ़ तत्त्वों को आत्मसात कर लिया था । मौलाना जामी अपने जीवन काल में ही दूर-दूर तक प्रसिद्धि का पात्र बन गये थे । सूफी-विचारों की गुत्थियों को इन्होंने अपने काव्य में सुलझाने का सफल प्रयास किया था । इसका देहान्त सन् 1492 ई० में हुआ था । इनकी गणना शेर सादी, मौलाना जलालुद्दीन रूमी हाफिज़ शीराज़ी आदि महान्तम सूफी कवियों के साथ की जाती है । इस परम्परा के सूफी कवियों में यह अंतिम है । यों तो यह विचार धारा निर्विघ्न रूप से आज तक प्रवाहित हो रही है, परन्तु जो सरलता, सरसता, अलौकिकता इनके काव्य में दृष्टि गोचर होती है, उसका निरन्तर ह्रास होता चला गया है । शेर सादी की गुलिस्ता के आधार पर इन्होंने "बहारिस्तान" की रचना की है जो गद्य और पद्य दोनों को अपने अन्दर सम्मिलित किये हुये है । इन्होंने अपने काव्य में सूफी विचार-धारा के निगू-दतम रहस्यों को प्रकट किया है -

हुये  
बड़े आईना (तो भी) नुमायद रूप ।

दिरेग कि आईना-ए-मा नहुफता दर जंग अस्त ॥

॥दीवाने जामी॥

अर्थात् दर्पण के अनुसार तेरा रूप लावण्य दृष्टि गोचर होता है। येद है कि हमारा दर्पण जंग से आच्छादित है ।

मौलाना जामी के पश्चात् जैसा कि ऊपर कहा गया है । कि यह धारा प्रवाहित तो होती रही है परन्तु उस परिपाटी में हासोन्मुख भाव ही दृष्टि-गत हुआ है । इसी ह्रास काल में कवि उफी शीराज़ी कवि सरमद आदि पदार्पण

करते हैं जिनके काव्य को वह प्रतिदि और लोक प्रियता न प्राप्त हो सकी जो पूर्व कवियों को प्राप्त थी ।

इन फ़ारसी कवियों ने रुढ़िवादिता का बहिष्कार किया था । पहले से चली आ रही सुशामद की प्रवृत्ति जो क़सीदों के द्वारा प्रकट होती थी, इन सुफ़ियों के यहाँ आकर दम तोड़ चुकी थी । सामाजिक बुराईयों के कारण भाषा भी विकृत हो चुकी थी । तत्पक्ष के प्रभाव के कारण काव्य की भाषा पुनः शिष्ट और नैतिक बन गई और दिक्कतीयों सदा के लिए विलुप्त हो गई । इन फ़ारसी के प्रेममार्गी कवियों ने प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग कर लौकिकता को अलौकिकता में परिवर्तित कर दिया । इनकी भाषा में शिष्टता के दर्शन स्थान-स्थान पर दिखाई देने लगे । जिनके द्वारा एक ही शब्द को अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया जाने लगा । सुफी-साधना प्रेममयी होने के कारण सहानुभूति, सहनशीलता पर दुःख का तरता आदि भावों से ओत-प्रो हो उठी ।

फ़ारसी-कविता के इन्हीं गुणों के आधार पर लोगों के आत्म-सम्मान की रक्षा हुई और उनमें गरिमा का भाव बज्जागर हो उठा । इस प्रकार से इस काव्य ने समाज-कल्याण भी किया ।

### हिन्दी सुफी-काव्य का उद्भव तथा विकास

सुफी-प्रेम-काव्य की पावन और कल्याण कारिणी यह गंगा अवाध रूप से प्रवाहित होती रही है । आगे चलकर यह प्रेममयी काव्य-तरंगिणी अनेक धाराओं में विभक्त हो गई । इन्हीं में से एक धारा भारत की ओर अग्रसर हुई, और उचित भूमि एवं वातावरण के प्राप्त होने पर इसने बड़ी गम्भीरता के साथ बहना प्रारम्भ कर दिया । कहे का तात्पर्य यह है कि

सुफियों ने जब भारत भूमि पर पदार्पण किया, तो उनको यहाँ का समाजिक वातावरण रास आ गया। उन्होंने अपने मन के उद्गार, हृदय की पीड़ा और अपना प्रेम उस परम ज्योति के प्रति प्रदर्शित करने में किसी अजनबी-जन का अनुभव नहीं किया। उसी वेग, लीप और तन्मयता के साथ सुफियों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति भारत में की, जिस वेग लीप और तन्मयता के साथ वे भारत-आगमन से पूर्व ईरान आदि अमरातीय देशों में कर रहे थे।

सुफियों ने भारत में आकर कुछ समय तक तो फ़ारसी भाषा को अपनी लेखनी का आधार बनाया, परन्तु जब उन्हें यह भली-भाँति विदित हो गया कि फ़ारसी भाषा राज-दरबार की भाषा है सरदारों और अमीरों की भाषा है, ज़िलों और महलों की भाषा है तो उन्होंने इसका आश्रय लेना छोड़ दिया। सुफियों ने बड़ी ही दूर दक्षिणता से काम लेकर भारत की क्षेत्रीय बोलियों को अपने काव्य का माध्यम बनाया। यह उनके हृदय की विशालता का भी द्योतक है। वे जनसाधारण के निकट आना चाहते थे और उनके निकट आने में ही उनके लक्ष्य की पूर्ति होती थी। उन्हें तो अपने विचार जनसाधारण में प्रचारित तथा प्रसारित करने थे। यही कारण था कि ये सुफ़ी लोग धनवानों, अमीरों और राजा महाराजाओं से स्वयं को सर्वथा दूर ही रखते थे। यद्यपि इस विचार के कारण इनको अनेक बार इन धनी, अमीर और राज-दरबार का कोप-भाजन तक बनना पड़ा था। अपने आपको जनसाधारण का एक अंग समझकर चलने में, उनके साथ भाईचारे का व्यवहार करने में, उनके साथ समन्वय और सामन्वय स्थापित करने में जितनी भूमिका विपत्ति सम्प्रदाय के सुफ़ियों ने प्रस्तुत की है उतनी अन्य सम्प्रदाय के सुफ़ियों में देखने को नहीं मिलती।



भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के अग्रणी छ्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी हैं । उन्होंने कभी भी राज-दरबार से सम्पर्क स्थापित नहीं किया । उनकी शिष्य परम्परा में एक श्रेष्ठ हमीदुद्दीन नागौरी हैं जो नागौर के निज्जत सवाली नामक ग्राम में खेती करके अपनी जीविकोपार्जन करते थे तथा दूसरे प्रमुख शिष्य बाबा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी थे जो दिल्ली के निज्जत महरोली को अपना-साधना स्थल बनाये हुये थे । प्रकारान्तर से दोनों ने ही अपने सम्प्रदाय की गरिमा को बनाये रखा और अपने गुरुओं की भाँति जन साधारण से सम्पर्क स्थापित किया । इन लोगों ने क्षेत्रीय बोलियों में रुचि लेकर उन्हें सीख लिया और उन्हीं बोलियों के माध्यम से वे अपने विचार जन साधारण तक पहुँचाने में मग्न रहे ।

श्रेष्ठ हमीदुद्दीन नागौरी हिन्दी भाषा अच्छी प्रकार बोल लेते थे और उसमें कविता तक कर लेते थे -

जिरते चीन जो रोगिन गई, जोगिन करी गुन गई को दोस ।

अवन रसायन सँघरे रंग जो मारे ओस ॥

॥सुत्कस्तुइर पृष्ठ 74॥

निज़ामी गंजवी के फ़ारसी दोहे का हिन्दी अनुवाद श्रेष्ठ हमी-  
दुद्दीन नागौरी द्वारा -

औषधी भोजन धीन गई, औउ भई विरहीन ।

औषधी दोष न जानई, नारि न घेते तीन ॥

॥सुत्कस्तुइर पृष्ठ 302॥

हिरा आय कीर छाड़ गो यह बहु भेला ॥१॥ होय ।

पिउ निस्तारे गैव तिहि अभ निस्तारे कोय ॥

शेख हमीदुद्दीन नागौरी के पौत्र शेख फ़रीदुद्दीन महमूद के पौत्र  
शेख फ़तु हल्लह ने भी हिन्दी बोली में रचना की थी । उदाहरण स्वल्प  
दाटव्य है -

मेरा हिथोरा दीदहा [१] जी जाने केह जाऊँ ।

सौगर फूँक करेला खा, सुलिक से नेह लगाऊँ ॥

\* \* \* \* \*

मन चाहै में सुलिक जाऊँ । सौगर फूँक करेला खाऊँ ॥

उधर दिल्ली में स्थित बाबा बड़ियार काकी के शिष्यों में से  
प्रमुख शेख फ़रीदुद्दीन गंज अकर ने भी अजोधन [पाक पटन] में रहकर  
क्षेत्रीय भाषा में लीप लेकर हिन्दी में कविता करना प्रारम्भ कर दिया था-

असा केरी गही सुरीत । जाऊँ नाथ कि जाऊँ मसीत ॥

\* \* \* \* \*

झड़ का रसुण निआरा है ।

जुण मद पीर के न पारा है ॥

\* \* \*

टोपी लेदी बावरे देदी खरी निलज्ज ।

पूहा गइड ना मानवे पिच्छे बन्धते हण्ण ॥

मुँहा मुँड मुँहाझी, तिरै मुँड क्या होय ।

किन्ते मेहो मुँहा, सुरग न लइये कोय ॥

उपरोक्त दोहों को अब्दुलवाहिद बिलग्रामी ने अपने महत्वपूर्ण  
ग्रन्थ "सबा सनाबल" में भी बाबा फ़रीद गंज अकर के नाम से उद्धृत  
किया है । सिखों की धार्मिक पुस्तक "गुरु ग्रन्थ साहब" में भी बाबा

फरीद के कुछ दोहे संकलित किये गये हैं ।

बाबा फरीद के अनेक शिष्यों में से जो स्थान, निज़ामुद्दीन औलिया को प्राप्त है, कदाचित दूसरे उससे वीथत रह गये हैं । श्रेष्ठ निज़ामुद्दीन औलिया ने दिल्ली में रहकर अपने सम्प्रदाय की उन्नति के लिए बड़ी लगन और तन्मयता के साथ कार्य किया था । श्रेष्ठ निज़ामुद्दीन औलिया समा की महफ़िल सजाने के लिये बड़े उत्सुक रहा करते थे । उनके यहाँ समा में हिन्दवी के गाने, कविता और ग़ज़लों प्रचुरता से पढ़ी जाती थीं । चिश्ती सम्प्रदाय के सुफ़ियों की छान-छाह में समा की और अधिक अभिरूचि पाई जाती थी । इनकी समा की महफ़िलों में हिन्दी भाषा में रची कविताएँ पढ़ी जाती थीं -

"समा" में हिन्दवी गीतों का प्रयोग तेरहवीं सदी से ही प्रारम्भ हो गया था । श्रेष्ठ अहमद नहरवानी बड़े ही मधुर स्वर में हिन्दवी गीत गाया करते थे ।<sup>1</sup>

श्रेष्ठ निज़ामुद्दीन औलिया के सहस्रों शिष्य जो समाज के विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित थे, देश के विभिन्न भागों में जाकर अपने विचार जन साधारण तक पहुँचा रहे थे, और हिन्दू मुस्लिम समन्वय तथा सामन्वयकी योजना में अभिरूचि ले रहे थे । इन्हीं शिष्यों में से एक अमीर खुसरों नामी व्यक्ति भी थे जो अपनी काव्य-कुशलता और मधुर वाणी के कारण "वृत्तों हिन्द" के नाम से पुकारे जाते थे ।

अमीर खुसरों का वास्तविक नाम अब्दुल हसन था । खुसरों इनका उपनाम था, तथा अमीर की उपाधि, सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी ने इनकी

कविता से प्रसन्न होकर इन्हें प्रदान की थी । परन्तु वास्तविक नाम को छोड़कर इनका नाम अमीर खुसरो ही इतना प्रसिद्ध हुआ है कि लोग इसी नाम को इनका वास्तविक नाम समझने लगे हैं ।

अमीर खुसरो के पूर्वज बलख के निकट तुर्किस्तान के एक नामक स्थान के निवासी थे और लाधीन नामक कुबीले से सम्बंध रखते थे । तुर्की भाषा में लाधीन का अर्थ, गुलाम है । मंगोलों के आक्रमण के कारण इनके पिता अमीर सेफ़ुद्दीन महमूद भारत आ गये थे और जिला सटा के एक गाँव पीटियाली में निवास करने लगे थे । अमीर सेफ़ुद्दीन महमूद का विवाह एक नौमुस्लिम [नवे बने मुसलमान] सरदार रावल रमादुल्मुल्क की पुत्री के साथ हुआ था । अमीर खुसरो का जन्म 1273 ई० में पीटियाली में हुआ था । कुछ इनका जन्म स्थान दिल्ली भी मानते हैं । इसका कारण केवल यह है कि अमीर खुसरो ने अपने काव्य "कुरानुल्लादन" में दिल्ली नगर की अति प्रशंसा की है । जन्म दिल्ली में हुआ हो अथवा पीटियाली में हमारा लक्ष्य यही यह बताना है कि अमीर खुसरो श्रेष्ठ निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्यों में बहुमुखी प्रतिभा के पात्र थे । इन पर हिन्दू मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों का गंगा-जमनी प्रभाव पड़ा था ।

अमीर खुसरो आठ वर्ष की अवस्था में ही कविता रचने लगे थे । यद्यपि भारतवर्ष के फ़ारसी कवियों में इनकी गणना होती है, परन्तु साथ ही इनको "हिन्दवी" का जन्मदाता भी स्वीकार किया जाता है । इन्होंने फ़ारसी के साथ-साथ उत्तरी भारत की क्षेत्रीय भाषाओं में और विशेष रूप से ब्रज भाषा, अवधी और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली उर्दू बोली हिन्दी में काव्य-रचना की है । भाषा ज्ञात्री डा० भोलानाथ तिवारी का यह कथन कि "उनकी रचनाओं में कोई भी ब्रज भाषा में

नहीं है ।<sup>1</sup> अर्धहीन ज्ञान पढ़ता है । क्योंकि ब्रज क्षेत्र में अधिकांश लोग उनकी कविताओं को बड़ी रुचि के साथ गाते सुने जाते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छुसरो को शौर-सैनी । पुरानी ब्रज भाषा<sup>2</sup> अथवा ब्रज भाषा का, तथा दिल्ली के आस पास की खड़ी बोली का, जिसका मुकाब ब्रज-भाषा की ओर होता था, कवि माना है - "इसी से छुसरो की हिन्दी रचनाओं में भी दो प्रकार की भाषा पाई जाती है । ठेठ खड़ी बोली-पाल पहेलियों, मुकीरियों और दो सखुनों में ही मिलती है - यद्यपि उनमें भी कहीं-कहीं ब्रज भाषा की झलक है । पर गीतों और दोहों की भाषा ब्रज या कुछ प्रचलित काव्य भाषा ही है । यही ब्रज भाषापन देख, उर्दू-साहित्य के इतिहास-लेखक प्रो० आज़ाद को यह भ्रम हुआ था कि ब्रज भाषा से खड़ी बोली, अर्थात् उसका अरबी फारसी ग्रस्त रूप, उर्दू निकल पड़ी ।<sup>2</sup>

उपर्युक्त दृष्टान्त से सिद्ध हो जाता है कि छुसरो ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों में ही कविता लिखा करते थे । उनके द्वारा रचित निम्न दोहा तो अति प्रसिद्ध है जो ब्रज भाषा में लिखा गया है -

गोरी सौंवे सेज पे मुख पे डारै केस ।

यस छुसरो घर आपने रैन भई पहुँ देस ॥

इसके अतिरिक्त ब्रज भाषा के अन्य उदाहरण भी पठनीय हैं -

यूक भई कहु धासों रेसी । देस छोड़ भयो परदेसी ॥

धाम मास बाके नहीं नेक । हाड़ हाड़ में बाके छेद ॥

मोहि अर्धभो आवत रेसे । बायें जीव बसत है केसे ॥

1- अमीर छुसरो, डा० भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ 12

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 51

मेरा जोचना नवेलरा भयो है गुलाल ।

जैसे गर दीनी बजस मोरी लाल ॥

उपर्युक्त उदाहरणों से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि दूसरी हिन्दी की अन्य बोलियों के साथ-साथ ब्रज भाषा में भी कविता किया करते थे । उधर दक्षिणी भारत में यद्यपि हिन्दवी भाषा में कुछ लिखना तथा कविता रचने का कार्य मुल्ला वज्जही ने प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु हिन्दवी की उत्तरोत्तर विकास की ओर उन्मुख करने का प्रेरक श्रेष्ठ "ग़ेसु दराज़ बन्दा नवाज़" को है, जो दिल्ली से अपने गुरु श्रेष्ठ नसीरुद्दीन घिराग़ देहली से आजा लेकर गुल बर्गा चले गये थे । इनकी समा की महफ़िलों में हिन्दवी की सूफ़ी कविताओं का पाठ भी होता था ।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चिश्ती सम्प्रदाय के इन सूफ़ियों ने फ़ारसी भाषा का बोला तो अपने हाथों से लिखवा दिया था, और भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं के आवरण को अपने ऊपर लपेटते जा रहे थे । इसका प्रमुख कारण एक ही था, कि ये अपने विचार भारतीय जनसाधारण तक पहुँचाना चाहते थे और उसका माध्यम केवल उनकी जन साधारण में प्रयुक्त होने वाली भाषा ही थी ।

चिश्ती सम्प्रदाय के इन सूफ़ी कवियों ने यद्यपि हिन्दी भाषा में जो काव्य रचना की थी, वह भाव और वैचारिकता की दृष्टि से तो उच्च कोटि की थी<sup>है</sup> परन्तु उसमें वह विरह की पीर देखने को कम मिलती है जो इसी परंपरा के परिवर्ती सूफ़ी कवियों के प्रमाख़ानक काव्यों में प्रचुरता से पाई जाती है । इस परिवर्ती परम्परा में श्रेष्ठ कुतुब अली कुतुबन, मख़न, मौलिक मोहम्मद जायसी आदि सूफ़ी कवि आते हैं जिन्होंने भारतीय लोक कथाओं को अपने विचारों का माध्यम बनाकर अपने मत का प्रतिपादन बड़ी ही सफलता के साथ किया है ।

### सूफी काव्य की क्या वस्तु -

इन सूफी कवियों ने लोक-प्रचलित कहानियों को अपनाकर उनके माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से अपने धार्मिक विश्वासों को अभिव्यक्त किया है जिसे हिन्दी भाषा में अन्योन्यित और उर्दू भाषा में हज़ल कहते हैं। इन सूफियों ने अपने काव्य में जगत के माध्यम से सूक्ष्म ब्रह्म की अनुभूति का उपक्रम किया है। इन कवियों द्वारा सूफी कवि अपने उदार तथा आध्यात्मिक भावों को जनता तक पहुँचाना चाहते थे। सूफी कवि जगत के कण-कण में परम ब्रह्म का आभास पाते हैं तथा सम्पूर्ण सृष्टि को उसी के प्रेम में निमग्न देखते हैं। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य है - कण-कण में उस परम प्रियतम का जलवा देना। परम प्रियतम से साक्षात्कार ही को उन्होंने अपनी साधना का मूल उद्देश्य बताया है।

सूफी साधक, क्योंकि सृष्टि के कण-कण में उस परम सौन्दर्य को व्याप्त पाता है, इसीलिये सृष्टि की प्रत्येक वस्तु उसे उतनी ही प्रिय हो जाती है जितना वह स्वयं से प्रेम करता है। प्रत्येक चेतना और अचेतन में उसी परम प्रियतम के दर्शन का आनन्द लाभ प्राप्त करता है -

बे हिजाबी यह कि हर ज़र्रे में जलवा आसकार ।

फिर भी पर्दा यह कि सुरत आज तक देखी नहीं ॥

भारत वर्त में यद्यपि अनेक सम्प्रदाय और विचार धारा के सूफियों का जम घट लगा रहा है, परन्तु जो परस्पर भाई चारा और समन्वय की भावना पिशती सम्प्रदाय के सूफियों में पाई जाती है वह अन्य सम्प्रदाय के सूफियों में कम देखने में आती है। इसका प्रत्यक्ष कारण यह कि पिशती सम्प्रदाय के सूफियों ने अपना सम्पर्क सदा जनता से बनाये रखा है और

राज-दरबार की ओर उनकी उदासीनता बनी रही है । उन्होंने तो सदैव जनता जनार्दन के मध्य रहकर ही अपने मत का प्रतिपादन किया है । अपने पूर्व वर्ती सूफी साधकों का अनुकरण इस सम्प्रदाय के सूफी करते रहे हैं । अपने विरह की पीड़ा को काव्य के रूप में व्यक्त करके, उन्होंने न केवल अपने मत का प्रचार ही किया है वरन् हिन्दी भाषा-काव्य में एक नये युग का श्री गणेश भी किया है । इस सम्प्रदाय के परवर्ती सूफियों ने लोक-प्रचलित कथा एवं कहानियों को आधार बनाकर अपने मत का प्रतिपादन अन्यायित एवं समालोचित शैली में बढ़ी ही सफलता पूर्वक किया है । उन्होंने अपने काव्य में दार्शनिक विचार धारा के साथ-साथ मानव हृदय की कोमल भावनाओं का समावेश किया है । इनकी वाणी में गहुरता, कोमलता और इनके हृदय में आद्रता पाई जाती थी जिसका प्रदर्शन उन्होंने अपने काव्य में तुल्य किया है । उन्होंने धृष्ट और विद्वेष की भावना को तिलांजलि देकर सबके दृष्टिकोण का समान रूप से मूल्यांकन किया है ।

अपने आदर्श विचारों को काव्य का रूप देकर उन्होंने सर्वत्र सामाजिक सुधार की ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखा है । सदाचार एवं निष्कटता तो मानो इनकी चुद्दी में मिली हुई थी । विषय के सम्पूर्ण कोष में सदाचारी व्यक्तित्व निःसन्देह बहुमूल्य होती है । व्यक्तित्व के निर्माण में इसी दृष्टकर कार्य को इन सूफियों ने जिस सहजता, जिस तन्त्र्यता, जिस निष्कटता, सरलता, सादगी एवं जिस मुग्धता के साथ सफल कर दिखाया और जिस सामाजिक सीमा तक विषयी सम्प्रदाय के इन साधक कवियों ने जन साधारण तक अपने विचार पहुँचाने में जो सफल रहे हैं, उसका उदाहरण अन्यत्र कठिनता से ही देखने को मिलता है । इनके काव्य पर सरसरी सी दृष्टि डाल कर देखें, तो पता चलेगा—इनके दृढ़ विश्वास का, चरित्र एवं स्वभाव की पवित्रता का, आत्म विश्वास का,



जितेन्द्रिय होने का, सांसारिक मोह से विरहित का, निस्वार्थ भावना का, तथा निरुपक्ष भाव से सेवा करने का, इनके काव्य में सम्मिलित गुण जो इनके धार्मिक विचारों के साथ समान्तर रूप से चले हैं, सदैव से वीक्षनीय रहे हैं और आज वहीं अधिक वीक्षनीय हैं ।

इन सुफ़ी कवियों ने भारत की भूमि पर प्रेम का आश्रय लेकर अपने मत की जाहूरी को उस समय प्रवाहित किया था जब यहाँ अनेक मत-मतान्तर अनेक वाद, जैसे सगुण वाद, निर्गुणवाद आदि की सरितायें जनसाधारण की धार्मिक पिपासाओं को तृप्त करने हेतु तब तक बह निकली थीं । निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल देते हुये इन्होंने अपने मत के प्रतिपादन में प्रेम का आश्रय लिया । इसी प्रेम को आधार बनाकर ये सुफ़ी कवि अनवरत जनसाधारण के बीच प्रेम एवं श्रद्धा के पात्र बनते चले गये । कारण इसका स्पष्ट है कि इनकी लेखनी ऐसे माध्यम से गुजरती जिससे भारतवासी पूर्व परिचित थे । अर्थात् यही लोक कथाएँ जिन्हें यहाँ का समाज बड़ी स्वीच एवं श्रद्धा के साथ सुना करता था । हिन्दी साहित्य के विद्वानों ने इस्तेस्वीफ़ियों की प्रेमाश्रयी पद्धति बख़्श पुकारा है ।

### प्रेमाश्रयी परम्परा के प्रमुख सुफ़ी कवि -

हिन्दी सुफ़ी-काव्य की इस प्रेमाश्रयी परम्परा में सर्व प्रथम नाम मोलाना दाऊद का आता है । मोलाना दाऊद द्वारा लिखी गई हिन्दी भाषा में प्रेमाख्यानक रचना "बन्दायन" है । मोलाना दाऊद, जिनको मुल्ता दाऊद के नाम से भी पुकारा जाता है, लखनऊ के निरुद्ध ज़िला रायबरेली के कुस्बा इलमऊ के निवासी थे । मोलाना दाऊद विषती सम्प्रदाय की निज़ामिया शाखा से सम्बन्धित थे । कुदाया निज़ामुद्दीन औलिया के खलीफ़ा शेख़ नसीरुद्दीन महमूद घिराग़ दिल्ली के भान्से शेख़ ज़ैनुद्दीन थे । और

शेख नसीरुद्दीन गिराग दिल्ली के यहा के खलीफा थे । मौलाना दाऊद शेख जेनुद्दीन के खलीफा थे । ऐसा अनुमान किया जाता है कि प्रेमछानक काव्य "चन्दायन" की रचना सन् 1380 ई० से पूर्व खान जहाँ यज़ीर के देहान्त [1370] होने के पश्चात; उसके पुत्र खाना खां के उत्तम पद पर आसीन होने पर हुई थी । मौलाना दाऊद ने खाना खां के ही सम्मान में चन्दायन की रचना की थी । प्रस्तुत रचना में लोक और चन्दा की प्रेम-कथा है । श्रोताओं पर मर्मस्पर्शी प्रभाव डालने वाली इस रचना का मौलाना शेख तकीउद्दीन नियमित रूप से अपने शिष्यों के समक्ष पाठ किया करते थे । कुछ विद्वानों द्वारा नियमित पाठ के सम्बन्ध में प्रश्न किये जाने पर शेख तकीउद्दीन ने यही उत्तर दिया कि सम्पूर्ण रचना परम सत्य से सम्बन्धित है तथा कुछ पद्यांश तो कुरान शरीफ की व्याख्या तक करते हैं ।<sup>1</sup> प्रेमछानक काव्य "चन्दायन" क़स्बा डलमऊ की लोक प्रचलित कथा पर आधारित है । इस रचना का प्रभाव परवर्ती कवियों पर इतना पड़ा कि उन्होंने अन्य अनेक लोक प्रचलित कथाओं को आधार मानकर कई प्रेमछानक काव्यों की रचना कर डाली ।

शेख अब्दुल क़दूस गंगोही ने अपने पत्र में शेख जमाल धानेश्वरी को लिखा था कि चन्दायन का दोहा<sup>2</sup> कुरान शरीफ की उन आयात से मेल खाता है जिनमें पैगम्बर मुसा ने ईश्वर से दर्शन देने की प्रार्थना की थी और ईश्वर ने यह कहकर मना कर दिया कि मुसा को मेरा दर्शन सम्भव नहीं है । सुफी मतानुसार "अरनी" [मुसा ने ईश्वर से उसके दर्शन की प्रार्थना की] "लनत-रानी" [ईश्वर ने प्रार्थना अस्वीकार करते हुये कहा, कि मेरा दर्शन तेरे लिये सम्भव नहीं] ।

1- मुन्तीखुन्नत वारीख भाग-1, मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी, पृष्ठ 290

2- बिनु कीरया मोरि होलइ नावा, नयन क्यार[?] जैत नहि आवा ।

(A History of sufism in India, page-365, syed A.A. Rizvi)

"चन्दायन" की भाँति "मृगावती" नामक प्रेमाख्यानक काव्य भी पौराणिक कथा पर आधारित है । इस रचना में मृगावती के अनन्त सौन्दर्य की प्रतिष्ठाया अथवा उसके आश्रित सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब प्रदर्शित किया गया है तथा मृगावती को दीविक शक्ति सम्पन्न प्रदर्शित किया गया है । "मृगावती" के रचयिता श्रेष्ठ कुतुब अली कुतुबन ने उस असीम सत्ता के लिये हिन्दू-पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है । श्रेष्ठ कुतुबन ने उस परम सत्ता को निरंजन करतार; विधाता, परमेश्वर एक ओंकार तथा अलख आदि नामों से सम्बोधित किया है । सृष्टि की रचना का कारण पैगम्बर मुहम्मद को बताते हुये विद्वान कवि कुतुबन ने शिव और शक्ति की दो पृथक पृथक सत्ता की ओर अपना विचार व्यक्त किया है ।

श्रेष्ठ कुतुब अली कुतुबन मल्लदूम श्रेष्ठ बुद्धन के शिष्य थे । श्रेष्ठ बुद्धन श्रेष्ठ ईसा ताज जौन पुरी के शिष्य थे । यद्यपि श्रेष्ठ ईसा ताज पिषती सम्प्रदाय के सूफी साधक थे, परन्तु श्रेष्ठ बुद्धन ने पिषती और सुहरवदी दोनों ही सम्प्रदायों से दीक्षा प्राप्त की थी । श्रेष्ठ बुद्धन ने अपना मृगाव सुहरवदी सम्प्रदाय की ओर अधिक प्रदर्शित किया है ।

श्रेष्ठ कुतुबन ने जौनपुर के शाह, हुसैन शकी को अपना आश्रय दाता एवं संरक्षक घोषित करते हुये, उसकी घोर प्रशंसा की है । श्रेष्ठ कुतुबन ने अपने काव्य मृगावती की रचना सन् 1503 ई० में सम्पन्न कर ली थी ।

इसी प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा में आगे चलकर श्रेष्ठ मलिक मुहम्मद जायसी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने चन्दायन और मृगावती की लोक प्रचलित कथाओं के विपरीत महाकाव्य "पद्मावत" की रचना की है जिसकी कथा राजस्थान के भाटों द्वारा गाये गये गीतों पर आधारित है । पद्मावत की रचना जायसी ने सन् 1540-41 ई० में प्रारम्भ की थी । प्रस्तुत रचना

में चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी की प्रेम-कथा को वर्णित किया गया है ।

राघव चेलन नामी दरबारी-ब्राह्मण ने, राजा रत्नसेन से कुछ होकर तत्कालीन दिल्ली-सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी से रानी पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य की प्रशंसा की । सुल्तान अलाउद्दीन ने रानी को प्राप्त करने के लिये चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया ।

सम्पूर्ण कथा को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम भाग में पद्मावती का जन्म, हीरामन नामक तोते से राजकुमारी का प्रेम, राजा रत्नसेन का चित्तौड़ में जन्म, एक ब्राह्मण का व्यापारियों के साथ सिंहलद्वीप जाना और तोते का खरीदना तोता लेकर चित्तौड़ वापस आना तथा राजा रत्नसेन द्वारा तोता खरीदना, राजा रत्नसेन की अनुपस्थिति में हीरामन तोते द्वारा रानी नागमती से पद्मिनी के रूप-सौन्दर्य की चर्चा करना, रानी नागमती द्वारा तोते को मार डालने का आदेश अपनी दासी को देना, तोते को दासी द्वारा छुपा कर मारने का बहाना करना, बिल्ली द्वारा तोते के मारे जाने की घटना को नागमती द्वारा रत्नसेन को बताना, रत्नसेन का क्रोधित होना, दासी द्वारा तोता प्रस्तुत करना, तोते द्वारा रत्नसेन से पद्मिनी का रूप-सौन्दर्य वर्णन करना तथा रत्नसेन का पद्मिनी के वियोग में व्याकुल होना, योग धारण करना, तोते को साथ लेकर सिंहलद्वीप पहुँचाना, तोते का पद्मावती के पास जाना तथा राजा के प्रेम जनित विरह का वर्णन करना, पद्मिनी का रत्नसेन के प्रीत आसक्त होना, आसक्त-साधना में नौ नाथ तथा चौरासी सिद्धों द्वारा राजा का मार्ग-दर्शन करना, तोते के प्रयास से पद्मिनी और रत्नसेन का वैवाहिक सुत्र में बंधना सम्मिलित है ।

क्या का द्वितीय भाग रत्नसेन का पद्मिनी को लेकर पित्तोड़ वापस आना, राघव चेतन के दुराचरण पर उसे निकालना तथा राघव चेतना द्वारा सुल्तान अलाउद्दीन को पित्तोड़ पर आक्रमण के लिये उकसाना अलाउद्दीन का पित्तोड़ पर आक्रमण करना, राजा को बन्दी बनाना और दिल्ली लेजाकर कैद खाने में डाल देना, पद्मिनी द्वारा गोरा और बादल से राजा को मुक्त कराने की प्रार्थना करना, गोरा और बादल का सेना लेकर दिल्ली पर आक्रमण करना और रत्नसेन को मुक्त कराना, युद्ध में गोरा का मारा जाना तथा बादल द्वारा रत्नसेन को साथ लेकर दिल्ली वापस लौटना । कुछ समय पश्चात अन्य राजपूत सरदार द्वारा रत्नसेन का मारा जाना तथा चन्दायन की भीति ही दोनों विधवाओं-नागमती तथा पद्म-माधवी का सती होना आदि पर आधारित किया जा सकता है ।

इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रत्नसेन को योगी बनाकर नाथ परम्परा की चर्चा ही नहीं हुई है, परन्तु जायसी की स्वयं की स्त्री का भी परिषय प्राप्त होता है । समान रूप से पायी जाने वाली परम्पराओं को भी ऊँच ने प्रदर्शित किया है जो नाथों एवं सूफियों में पायी जाती थी । ऊँच ने सिंहेल द्वीप की तुलना सुमेरु पर्वत से की है जिसके निर्द दैविक शक्तियाँ निरन्तर चक्कर काटती रहती हैं । सूर्य और चन्द्रमा का सिंहेल के ऊपर से न गुजरना, परन्तु उसकी परिक्रमा करना, दुर्ग की रक्षा हेतु अमेय नौ दारों की घेरा बन्दी तथा प्रत्येक द्वार पर एक-एक हजार सैनिकों का बैठे रहना भी दिखाया गया है । पाँच चौकी-दारों का घूम-घूमकर पहरा देना, और उनके पैर पटकने से सभी दारों का धरा जाना दिखाया गया है । दुर्ग के प्रत्येक द्वार पर सिंहों की दली हुई प्रतिमाएँ स्थापित हैं । जिनसे बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के हृदय भय से कंपित हो

उठते हैं। सिंहों को ऐसी कुशलता पूर्वक दला गया है, मानों वे दहाड़ रहे हों तथा छलांग लगाने ही वाले हैं। सिंह अपनी जिह्वाओं को लपलपाते तथा अपना पूछों को हिलाते हुये से प्रतीत होते हैं। हाथी भी उनसे भयभीत होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों वे दहाड़ते हुये हाथियों पर आक्रमण करने ही वाले हैं। स्वर्ण रत्न बहुमूल्य रत्नों से जड़ित एक ज़ीना बना हुआ है, जो नील गगन में सबसे ऊपर निर्मित दुर्ग तक ले जाता है।

नाथ-सम्प्रदाय के अनुसार मानव-शरीर एक प्रकार का दुर्ग है, जिसमें सूर्य [अग्नि] और चन्द्रमा [शिव] पृथक-पृथक सत्ता में स्थित हैं। इनके मिलन की अवस्था ही सुखमय अवस्था है। नौ चक्र अति दुर्गम हैं क्योंकि सहस्रों दुर्गुणों से घिरे हुए हैं। पाँच संकट हैं जो निरन्तर चौकीदारी करते हैं और चक्रों पर प्रगीत में योगी के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं। योगिक अभ्यास कठिन से कठिनतर होते चले जाते हैं। इसीलिये उनके करने में बड़ी ही सतर्कता तथा सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक चक्र पर देवी का आधिपत्य होता है जिसकी सुरक्षा एक सिंह द्वारा होती है तथा वही योगी को चक्रों में प्रवेश करने से रोकता है। हाथी अज्ञानता का प्रतीक है जो सिंहों से भयभीत रहता है। स्वर्ण-निर्मित ज़ीना सुषुम्णा नाड़ी है जिससे तत्त्व-सत्त्व, रज, तम क्रमशः सदाचार, लालसा और मृदुता उत्पन्न करते हैं और इनकी आकृति क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के समान है।

योगाभ्यास में आने वाली अवस्थायें एवं बाधायें सूफी-मार्ग में भी पाई जाती हैं। परन्तु सूफियों के योगाभ्यास में केवल चार अवस्थायें [मीज़लें] हैं - नासूत, मलकूत, जबस्त और लाहूत। इब्नुल अरबी के मतानु-सार सूफी नासूत [मानव-प्रकृति] को एक पात्र के समान तथा लाहूत [देवी प्रकृति] को उसमें स्थित मानते हैं।

पद्मावती नामक प्रेमाख्यान में जायसी योगी की वास्तव वैश्व-भूषा से सम्बन्धित अनेक वस्तुओं का वर्णन करते हैं । साथ ही तोते के द्वारा सच्चे योगी के जीवन-मार्ग में आने वाली कठिनाइयों से भी योगी रत्नसेन को परिचित कराया जाता है -

तोता कहता कि योग-साधना मार्ग में योग-कथा कहने से कोई लाभ नहीं है । बिना दीध मूँ घृत नहीं निकाला जा सकता है । अर्थात् जब तक योग-साधना में योगी मग्न नहीं होगा, तब तक उसका वर्णन करने से कोई लाभ नहीं है । जब तक योगी अहं को समाप्त कर, अपने प्रियतम के साथ एकाकार न हो जाये, तब तक वह प्रियतम सोचने पर भी प्राप्त नहीं हो सकता । पिथाता ने प्रेम-पर्वत को बड़ा ही दुर्मध्य बनाया है । इस पर केवल वही चढ़ सकता है जो तिर के बल पड़े । प्रेम-मार्ग सुली-मार्ग है जिस पर सुली की नौकें स्थान-स्थान पर उभरी हुई हैं । सुली पर या तो घोर चढ़ा करता है या फिर मन्सूर चढ़ा था । तुम राजा मूँ । तुम क्यारी कथा पहन सकोगे ? अर्थात् तुम से योग-साधना नहीं होगी । तुम्हारे शरीर में दस द्वार हैं । काम, क्रोध, लोभ, मद और माया रूपी पाँच घोर किसी न किसी द्वार से सदा तुम्हारे शरीर में प्रवेश करते रहते हैं । इन पाँचों घोरों ने तुम्हारे शरीर में बने नौ-द्वारों [छिद्रों] को देख रखा है । इन्हीं द्वारों द्वारा वे रात दिन भीतर घुसकर तुम्हारे घर [शरीर] को लूटते रहते हैं । अर्थात् तुम इन्हीं के चक्कर में फँसी रहते हो ।

अतः है मूर्ख राजा । अब तू अपनी मोह निद्रा से जाग जा । क्योंकि रात्रि समाप्त हो गई है और सवेरा होता जा रहा है । जब घोर सभी कुछ लूट कर ले जायेंगे तो तेरे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा । अर्थात् समय रहते ज्ञान प्राप्त कर ले ।

जायसी मतानुसार कोई भी योगी उसी समय सिद्ध हो सकता है जब वह गोरख से मिल लेता है। यही गोरख, गहदी उपदेश देने वाला की प्रतिमूर्ति है। मलिक मुहम्मद जायसी भारतीय विचार-धारा से भली-भाँति परिचित थे। इनका जन्म 1494-95 ई० में हुआ था और तीस वर्ष की अवस्था में अच्छी कविता रचने लगे थे।

जायसी ने "पद्मावती" की रचना सन् 1520-21 ई० में प्रारम्भ की थी और जेरआह सूरी के शासन-काल में सन् 1540 ई० पूर्ण की थी। "आँखरी प्लाम" की रचना बाबर के शासन-काल में की थी तथा "अउराब्द" नाम की रचना "पद्मावती" से पूर्व की है। इसके साथ-साथ कान्हावत, कहरा नामा, पुस्तीनामा और होलीनामा आदि अन्य ग्रन्थों की तथा सौराओं की रचना भी जायसी द्वारा हुई है।

जायसी <sup>के</sup>गुरु कालपी-निवासी श्रेष्ठ बुरहान थे, जिन्होंने स्वयं हिन्दी में रचनाएँ की थीं। इन्हीं के प्रभाव-क्षेत्र में आकर जायसी ने अनेक ग्रन्थों के साथ-साथ पद्मावत जैसे महाकाव्य की रचना कर डाली।

"मेराजल विलायत" के रचयिता कसूरी के मतानुसार श्री जायसी अकबर के शासन-काल तक जीवित रहे थे। अकबर के शासन-काल के अन्तिम दिनों में कभी उनका देहान्त हुआ था।

"पद्मावती" की रचना के कुछ समय पश्चात् ही कवि मदन ने मधु-मालती की रचना की। सुफ़ियों द्वारा हिन्दी में काव्य-रचना की यह परम्परा सत्रहवीं शताब्दी ईसवी तक जारी रही। उन्हीं में एक श्रेष्ठ उदाहरण है, जिन्होंने चित्रावली की रचना 1613-14 ई० में की थी और दूसरे श्रेष्ठ नबी हैं जिन्होंने ज्ञान-दीप की रचना सन् 1614-15 ई० में की



थी । कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमाख्यानों की इस परम्परा में जायसी पूर्व एवं परवर्ती कवियों के काव्य में वह धारा प्रवाह नहीं है जो जायसी की पद्मावत में है । यद्यपि अन्य कवियों की रचनाओं में भी कहीं लोक-प्रचलित कथाएँ पाई जाती हैं परन्तु महाकाव्य होने का गौरव केवल मौलिक मुहम्मद जायसी की पद्मावत को ही प्राप्त हो सका है । इस महा-ग्रन्थ में बड़ी गूढ़ विवेचना की गई है । इसके अध्ययन से अनेक रहस्य भरी बातें मनुष्य को विचार मग्न किये बिना नहीं रहती ।

सूफियों की यह धारणा है कि वह [आत्मा] सदैव अपने प्रियतम से तदाकार प्राप्त करने के लिये तड़पती रहती है । मौलाना जलालुद्दीन रूमी ने इसका सक्ति अपनी गसनवी में लिखा है । इसी सिद्धान्त की भाषा हम जायसी के पद्मावत में भी पाते हैं -

**"थाय जो बाजा के मन साधा, मारा यहु भयऊ दुई आधा" ।**

इसमें जायसी ने स्पष्ट लिखा है कि पिशव के समस्त पदार्थ उस परमात्मा तक पहुँचने के लिये प्रयत्नशील हैं किन्तु अपनी साधना की अपूर्णता के कारण वे वही तक पहुँच नहीं पाते हैं । भारतीय धार्मिक दृष्टि से भी आत्मा परमात्मा का अंश है और वह सदैव तादात्म्य स्थापित करने के लिये तड़पती रहती है किन्तु माया के कारण वह सरलता पूर्वक मिलन नहीं कर पाती । जब साधक अपने ज्ञान के सहारे माया पर विजय प्राप्त कर लेता है, तभी तादात्म्य-लाभ प्राप्त कर पाता है । सूफियों ने सुनिद, उत्पत्ति तथा विकास<sup>के</sup> सम्बन्ध में जो मत व्यक्त किया है, उसके माध्यम से संसार एक दर्पण है जिसमें ईश्वर के धर्म प्रतीतिबम्बत होते रहते हैं ।

मानसरोवर छन्द के अन्तिम जायसी इसी प्रतीतिबम्बत की झांकी बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करते हैं -

नयन जो देखा कथल भा, निरमल नीर सररीर ।

हंसत जो देखा हंस भा, दसन जोरित नगहीर ॥

सुफी साधना पर अधिक बल देते हैं । इसके द्वारा कृत्ब [सत्य] को छुड़ करके वह [आत्मा] को विहीनित करते हैं । ऐसा करने के लिये उन्हें सात मुकामात [सात पड़ाव] से गुजरना पड़ता है । ये मुकामात क्रमशः प्रायश्चित्त, अकिम्पनता, त्याग सन्तोष, ईश्वर-विश्वास, धर्म तथा निरोध हैं । साथ ही ईश्वर-स्मरण तथा जयादि को भी आवश्यक माना गया है जिन्हें हातात की रीति से विभूषित किया गया है । इस प्रकार साधक अपने शरीर, मन और आत्मा को छुड़ करके साधना-मार्ग में अग्रसर होता है । इस स्थिति में साधक को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है । यही अवस्था सुफियों में तरीक़त की मीज़िल कहलाती है । प्रेम और ज्ञान के सहारे हक़ [सत्य] का बोध प्राप्त करना हकीक़त की मीज़िल है । इसके पश्चात् परम ज्ञान <sup>प्राप्त</sup> कर लेता है और ब्रह्म मग हो जाता है तथा ब्रह्म को पहचान जाता है । इसे मारिफ़त की मीज़िल कहते हैं ।

इन मीज़िल का वर्णन सुफियों ने बड़े विस्तार पूर्वक अपने काव्य में किया है । जायसी ने इन चार मीज़िलों [पड़ावों] की चर्चा इस प्रकार की है-

"चार बसेरे सौ पढ़ै, सत सौ उत्तरे पार"

इसी आधार पर जायसी ने रतनसेन की यात्रा को चार पड़ावों में विभक्त किया है । रतनसेन का पड़ाव समुद्र के किनारे पर होता है जो शरीरगत का प्रतीक है । दूसरे पड़ाव का मार्ग अति कठिन होने के कारण भयभीत कर देता है क्योंकि इस मार्ग में सात समुद्रों को पार करना पड़ता है (वही <sup>सात</sup> मुकामात हैं जिनका वर्णन किया जा चुका है)। उनमें आने वाले अनेक संकटों का सामना करते हुये साधक अग्रसर होता है । दूसरा मार्ग

अपेक्षा कृत कीटन है । सूफी मतानुसार शरीरगत से तरीक़त का मार्ग अति कीटन होता है । इस मार्ग के यात्री के लिये अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त करने के लिये सर्वस्व त्यागना पड़ता है । इसी का संकेत स्वयं जायसी ने इस प्रकार किया है -

जो कुछ दरब अहाँ संग, दान दीन्ह संसार ।  
न जाने कीह सत सेती, देव उतारे पार ॥

इस मार्ग में साधक को तत्त्व 'सत' का पूर्ण आश्रय लेना पड़ता है तभी साधक भव-सागर को पार कर पाता है -

"साधर तेरे हिस सत पूरा"

सूफियों के मतानुसार तीसरा पड़ाव हकीकत है । हकीकत की स्थिति का धर्षन भी बड़ा मनोरम बन पड़ा है । सातों समुद्रों को पार करने के पश्चात् साधक तीसरे पड़ाव पर आ जाता है । इस पड़ाव पर साधक को ब्रह्म के अस्तित्व की हकीकत 'वास्तविकता' ज्ञात हो जाती है । जायसी के काव्य में साधक रत्नसेनभी जब सातों समुद्रों को पार कर जाता है तो उसे भी मनोदीप्ति फलों की प्राप्ति हो जाती है तथा अज्ञान जनित अन्धकार समाप्त हो जाता है -

सत्यों समुद्र मानसर आर । मन जो कीन्ह साहस सिध पार ॥  
देख मानसर रूप गुहावा, दिख हुतास पुरझ होइ छावा ॥  
गा जीवधार रेनि गति छूटी, भा दिन सार केरन रवि फूटी ॥

सूफी-साधना मार्ग में मारिफ़त की अवस्था, अंतिम अवस्था है । इस सम्बन्ध में "लघुफुल महज़ूब" के लेखक हुणवेरी का मत है कि यह दो प्रकार की होती है - स्कहाली और दूसरी इत्मी । जायसी ने

“हाली मारिफत” की अवस्था का वर्णन किया है -

जोगी दृष्टि दृष्टि तो लीन्हा, नैन रोपि नैनहिं जिउ दीन्हा ॥  
जेहि मंद यदा पर तेहि पाते, सुधि न रही ओहि एक पिपाते ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि जब रत्नसेन रूपी साधक ने गद्गमावती रूपी ब्रह्म के दिव्य सौन्दर्य का साक्षात्कार किया तो उसके नेत्र बन्द हो गये, मानों उसके नेत्रों में ही उसने अपने प्राण प्रतिष्ठित कर दिये हों । उसके नेत्रों की मदिरा का पान करते ही साधक आत्म विभोर हो उठा और फिर उसे अपनी सुध-बुध न रही ।

हाल की स्थिति को भी सुक्री दो भागों में विभक्त करते हैं - त्याग पक्ष तथा प्राप्ति पक्ष । जायसी ने इन दोनों ही पक्षों को उजागर किया है । उपर्युक्त उदाहरण में त्याग पक्ष की स्थिति का आभास होता है । त्याग पक्ष के ही अन्तर्गत फ़ना का स्थान है, जिसे जायसी ने इस प्रकार विवक्षित किया है -

बूंद समुद्र जैस होई मेरा । गाछि राइ अस मिलै न हैरा ॥  
रंगहि पान मिला जस होई । आपहि छोय रहा होई सोई ॥

जिस प्रकार बूंद समुद्र में मिलकर विलीन हो जाती है उसी प्रकार साधक भी साध्य में विलीन हो जाता है अर्थात् साधक और साध्य एकाकार हो जाते हैं जिस प्रकार पानी में रंग मिलकर उसी में लो जाता है ।

इश्वर की सर्व व्यापकता का संकेत करते हुए जायसी कहते हैं -

“में जानेउ तुम्ह गोहि मीहा, देखों तारि तो हो सब पाहा”

इसमें अग्रेष्ठ वाद [जहदतुल सुषुद] की वर्णना की गई है । नागण्ठी एक स्थान पर रत्नसेन से कहती है -

"मैं समझती थी कि तुम केवल मुझसे ही प्रेम करते हो, किन्तु जब ध्यान पूर्वक देखा तो जात हुआ कि तुम सभी को प्रेम करते हो । अथवा मैं समझती थी कि ईश्वर मुझमें ही है, किन्तु जब खोजकर देखा तो जात हुआ कि ईश्वर सर्व व्यापी है । इस प्रकार सूफी विचार धारा की लगभग सभी बातों का संकेत जायसी ने कहीं समासोक्ति और कहीं अन्योक्ति के रूप में किया है ।

जायसी ने अपने काव्य में प्रेम और आध्यात्मिकता का सुन्दर गठ बन्धन किया है । ब्रह्म के सम्बन्ध में जायसी के विचार उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म के गुणों को भी प्रदर्शित करते हैं -

एहि विधि यिन्ह हुकारहुगियानू जस पुरान मंह लिखा बरवानू,  
जीउ माहि पर जिए गुसाईं कर नाहीं पर ऊरै भवाई  
जीम नाहीं पै सब कुछ बोला, तन नाहीं सब ठोहर डोला  
सुघन नाहि पै सब कुछ सुना, हिया नाहि पै सबकुछ गुना  
नयन नाहि पै सब कुछ देखा, कौन भीति अस जाय विशेषा  
है नाहीं कोई ताकर रूपा, ना ओहिस्तन कोई ओहि अनूपा  
ना ओहि बाउं न ओहि बिन ठाउ, रूप रेख बिन निरमल नाउं

ना वह मिला न वै हरा रजस हामर पूरि ।

दीठिवत वह नीचरे, अध भूरि यहि दूर ॥

"ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार समझना चाहिये जैसा कि पुराणों में वर्णित है । उसके प्राण नहीं हैं किन्तु वह फिर भी जीवित है । उसके हाथ नहीं हैं किन्तु संसार के समस्त कार्यों को करता है । उसके जीम नहीं है फिर भी सब कुछ बोल सकता है । बिना शरीर के ही समस्त स्थलों पर वह घूमता फिरता है । भ्रमण न होने पर भी वह सब कुछ सुनता है । बिना

ब्रह्म के होते हुये भी वह भावों का अनुभव करता है । नेत्र न होने पर भी वह समस्त विषय को देखता है । उस विशेष स्वरूप वाले ब्रह्म का वर्णन किस प्रकार किया जाये । उसका उपमान तंतार में कोई दूसरा नहीं है और न उससे बढ़कर कोई दूसरा अनुपम ही है । उसके रहने का कोई स्थान इस तंतार में नहीं है फिर भी तंतार का कोई स्थान उससे रिक्त नहीं है । उसका न कोई रूप है न कोई आकार है किन्तु फिर भी उसका निर्मल नाम है । वह न तो अभी प्राप्त ही होता है और न वह कभी अप्राप्य ही है । इस प्रकार वह समस्त तंतार में व्याप्त है । दृष्टिमान पुरुषों के लिये वह अति निकट है और अज्ञानी तथा मूर्खों के लिये वह अति दूर है ।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसी प्रकार के गुण ब्रह्म के गिनाये हैं-

बिनु पद यत्ने सुने बिनु जाना। कर बिनु करम करीवीध नाना ॥  
आनन रहित सबल रस भोगी। बिनु पाणी चम्पता बढि योगी ॥

जायसी ने ब्रह्म के उक्त गुणों को यद्यपि उपनिषद्-वर्णित बताया है, परन्तु ब्रह्म के ये गुण प्रकारान्तर से कुरान शरीफ में भी वर्णित हैं । कुरान शरीफ में अल्लाह {ईश्वर} को सुनने वाला, देखने वाला, सब कुछ करने वाला तथा करने की सामर्थ रखने वाला वर्णित किया गया है ।<sup>1</sup> कुरान शरीफ में अल्लाह को बसीर {दृष्टा} समीअ {प्रवण कर्ता} और अलीम {ज्ञानी} आदि विशेषणों से पुकारा गया है ।

फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान एवं कवि ज़ेयु सादी ने ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा है<sup>2</sup> कि "वृक्ष की हरि पतली के अन्दर फैली हुई सूक्ष्म एवं पतली

1- "इन्नल्लाहा समीउन अलीम" {वैश्वक वह अल्लाह सुनता है और जान रखता है} "इन्नल्लाहा समीउन बसीर" {वैश्वक वह अल्लाह सुनता है और देखता है}

2- बगै हरुताने सब्ज दर नज़रे होशियार ।  
कि हर घरके दफतरेस्त मारफ़ते किरिदगार ॥

नसों में से प्रत्येक में उस परस ब्रह्म का परिचय प्राप्त करने का दफ्तर [कार्यालय] है, एक पिवेकी रस जानी व्यक्ति की दृष्टि में ।

एक स्थान पर जायसी ने अपने काव्य पद्मावत में चित्रित किया है कि उस पिराट ब्रह्म स्त्री पद्मावती के दर्शनों की ओभा से सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र तक ज्योतिर्मय होते हैं । प्रकारान्तर से कुरान शरीफ में भी उसे [ब्रह्म को] समस्त आकाशों और पृथ्वी का प्रकाश बताया है ।<sup>1</sup> अर्थात् अल्लाह आसमानों और ज़मीन का नूर [प्रकाश] है । वही सृष्टि का कर्ता और समस्त प्रकार से मालिक है । वह सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य रखता है तथा सम्पूर्ण सृष्टि उसी के अधीन है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वह [अल्लाह] देखता भी है, सुनता भी है, जान रखता है, सारे कार्य करता है, फिर भी उसका कोई रूप नहीं है । क्योंकि वह दृष्टि गोचर नहीं है, इसलिये ऐसा आभास होता है कि वह दूर है । यद्यपि वह दूर नहीं है । कुरान शरीफ में अल्लाह स्वयं कहता है "हम अपने बन्दे की शहरम [वह बड़ी नस जो हृदय में जाकर मिलती है] से भी अधिक निकट हैं ।"<sup>2</sup>

जायसी ने अपने काव्य पद्मावत में ब्रह्म की अद्वैतता का बड़ा ही भावात्मक वर्णन किया है । वह पद्मावती स्त्री ब्रह्म स्वयं ही मन है और स्वयं जो चाहती है, करती है । उसके अतिरिक्त इस संसार में दूसरा कोई उस जैसा नहीं है ।

1- "अल्लाहो नूरुस्समा वाते बल्ल अर्क"

2- "नहनो अफ़रबो इलैहि मिन हबलिल वरीद" [कुरान शरीफ 50, 15]

आपुहि मीघ जिधन पुनि, आपुहि तन मन सोइ ।

आपुहि आपु करे जोय है कही सो दूसर कोई ॥

फ़ारसी भाषा के अद्वैतादी काव्य में भी उसे इसी प्रकार चित्रित किया गया है -

**"छुद क़ुज़ा ओ छुद क़ुज़ागर छुद ही गिले क़ुज़ा"**

अर्थात् वह !ब्रह्म! स्वयं पात्र है, स्वयं पात्र का निर्माता है और स्वयं पात्र की मिट्टी भी है ।

वह अपनी इच्छा से जो चाहता है, करता है । इसका स्पष्ट उल्लेख क़ुरान करीफ़ में है - वह केवल "हुन" !हो जा! कहता है और जैसा चाहता है, हो जाता है ।

जायसी ने अपने पद्मावत में रतनसेन और पद्मावती के प्रेम को प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित किया है । इस प्रकार का प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित प्रेम, धर्म का भाषात्मक तत्त्व सिद्ध पुरुष का आनन्दातीतरेक ज़हीद का साहस, संत का विश्वास तथा नैतिकता पूर्ण एवं आध्यात्मिक ज्ञान का एक मात्र आधार है । क्रियात्मक रूप से यह आत्म-विराग और आत्म-त्याग है । ऐसा त्याग, जिसमें अपने प्रियतम के लिये बिनाप्रति-फल की कामना किये, परित्याग कर देना है ।

प्रेम सूफ़ियों का सर्वोच्च सिद्धान्त है । मोलाना ज़लाहुद्दीन रूमी के शब्दों में -

**"प्रेम हमारे अभिमान और अहंकार की ओषधि है । हमारी समस्त कमज़ोरियों का चिकित्सक है । जिसका वस्त्र प्रेम में पहना जाता है**



वही पूर्ण रूप से निःस्वार्थ होता है ।”

सूफी काव्य की पूर्ववर्ती एवं परवर्ती सभी प्रेम-कथाओं में तथा रूपकों में जैसे-“लेला व गणनू”, “यूसुफ़ जुलेखा”, सुलेमान व अहसान”, शीमा व परवाना”, गुल व बुलबुल, चन्दावन, मृगावती मधुमालती, पद्मावती, चित्रावली, हंस जवाहर, आदि प्रेमाख्यानक काव्य, आत्मा की परमात्मा से पुनर्मिलन की उत्कृष्ट अभिलाषा के छाया-चित्र हैं । जायसी ने सूफी-प्रेम-साधना के अन्तर्गत कुण्डली योग की सभी पारिभाषाओं को अंगीकार किया है, जिससे उनके काव्य में भारतीयता का गहरा रंग आ गया है । सूफी-साधना की पारिभाषिक शब्दावली सरल बनकर भारतीय भावनाओं के साथ इस प्रकार घुल मिल गई कि अध्ययन करने पर दोनों में कोई विरोधाभास दिखाई नहीं देता । सिंहलदीप के वर्णन भली-भाँति स्पष्ट है -

“नव पंथरी बीकी नव छडा, नवहु जो चढ़े जाइ ब्रह्मण्डा”

ये नौ पौड़ी शरीर के नौ द्वार हैं, जिसका संकेत आर्षवेद में भी स्पष्ट मिलता है -

“अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानी पूरयोध्या”

जायसी ने इन नौ द्वारों की कल्पना को शरीरस्थ चक्रों के साथ मिला दिया है और उन्हें नौ छन्दों के साथ सम्बन्धित करके एक-एक छन्द को एक-एक द्वार कहा है । इन्हीं नौ द्वारों के ऊपर दसवाँ द्वार सहस्रार है-

1- रे दवाये नखवती नामूसे मा ।

रे तबीबे जुमला इल्लत हाये मा ॥

हर कि रा जामा जे इक्के पाक शुद ।

ऊ जे हिसे रेबे कुल्ली पाक शुद ॥ ॥ गोलाना रुमी ॥

दसम द्वार गुप्त एक नाकी, अगम पदाव वाट सुनि बाँकी ।  
भेदी कोई जाइ ओहि घाटी, जोई भेद चढ़े होइ बाँकी ॥

सुषुम्णा के इस प्रवेश द्वार को क्रौञ्च द्वार भी कहा जाता है ।  
उसका यह टेढ़ा भाग बंक नाल कहलाता है । उसी को जायसी ने बाँकी  
बाट या टेढ़ा मार्ग कहा है । इस गढ़ में जो सुरंग है, वही सुषुम्णा के अन्त-  
र्गत सुनिर है । उसके निचले छोर पर मूलाधार चक्र में सुरंग दारी है -

"गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया, परीख देखि है ओहि की छाया"

इस प्रकरण का सार-तत्त्व इसी में है । जायसी ने शरीर और सिंहल-  
गढ़ को एक दूसरे के अनुरूप बताया है । इस जानी पहचानी भारतीय विचार  
धारा के साथ ही सरलता पूर्वक सूफी-विचार धारा के चार पड़ावों का भी  
उल्लेख कर दिया है -

नवों छड नव पयरी ओ तैं बड़ केबार ।  
धारि बसेरे सों चढ़े सत सों चढ़े जो पार ॥

आध्यात्मिक अर्थों की व्यंजना के लिये जायसी ने इस प्रकार की  
शैली को अपनाया है जो एक शक्ति के रूप में परिष्कृत होकर आई है ।

विशुद्ध ज्ञान की प्राप्ति के लिये, मानव के अन्दर जो पाञ्चविक  
प्रवृत्तियाँ हैं, उनका तोप होना सर्वथा आवश्यक है । जायसी के शब्दों में  
विशुद्ध ज्ञान उसी समय प्राप्त हो सकता है जब मनुष्य मृत्यु से पूर्व मृत्यु को  
प्राप्त हो जाये -

"मरे सो जान होइ तस सुना"

"सुना" से जायसी का अभिप्राय सर्व शून्यावस्था है । इसके प्राप्त होने पर पित्त पर किसी प्रकार के दोषों का न तो प्रहार ही हो सकता है और न प्रभाव ही । सूफी विचार धारा के अन्तर्गत मनुष्य को पहले अपने जमीर को गार देना चाहिये, तभी वह स्वयं को पावन एवं साफ बना सकता है । बिना आत्म शुद्धि किये उसकी पहुँच ब्रह्म तक सम्भव नहीं है ।

ब्रह्मवाद के सिद्धान्त "यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे" के आधार पर उस परम ज्योति को अपने मन के अन्दर ही खोजना चाहिये -

"आत्तु दीप नवो छण्ड आठो दिता जो आहि ।

जो ब्रह्माण्ड सो पिण्ड है, हेरत अन्त न जाहि ॥

॥अध्याय ४-१॥

यह परम ज्योति मानव के अन्दर एक केंद्र पर व्याप्त होती है जिसे जीव कहा जाता है । इसी को हृदय-कमल की संज्ञा दी जाती है । वेदान्त में कहा गया है - "उस ब्रह्म की इस नगरी {मानव} में एक छोटा सा कमल है, जिसमें छोटा सा स्थान है । उसके अन्दर एक छोटा सा आकाश है । उसमें जो व्याप्त है, उसे खोजो और उसे सम्झो -

यदि दग्गिगन ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकविम,

दहरो डीस्मन्नतराकाशस्तीस्मिन् यदन्तः तदन्वेष्टव्यम्

तद् वाच विविज्ज्ञासिततव्यम् ॥ ॥छान्दोग्य ४/१/१॥

इसी भाव को जायसी ने यों प्रकट किया है -

अहुत हाथ तनु सरवरहिवा कँवल तेहि गीहि ।

नैनीहँ जानहु निअरें कर पहुँचत अवगाहि ॥

जायसी ने अपने काव्य में संस्कृत और फ़ारसी की सुविक्तों का भी प्रयोग बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है -

झेले झेले माणिक्य, मोहितक न गये गये ।  
साधयो नाहि सर्वत्र, चन्दन न घने घने ॥

जायसी इसी को इस प्रकार प्रकट करते हैं -

धल धल नगन होहि जेहि जोती, जल जल सीप न उपजोहि मोती ।  
वन वन बिबिरछ न चन्दन होई, तन तन धिरह न उपजे सोई ॥

और अन्ध्र फ़ारसी भाषा में भी -

"दूर जाँ बा बसर नज़दीक, व नज़दीक जाँ बे बसर दूर"

अर्थात् दृष्टि वाले को दूर का भी नज़दीक [निज] नज़र आता है और दृष्टिहीन को नज़दीक का भी दूर नज़र आता है । मलिक मुहम्मद जायसी ने इसे इस प्रकार प्रकट किया है -

"नियरीहँ दूर फूल जस कीटा, दूरीहँ नियर जइस गुर चीटा"

इसके अतिरिक्त लोकगीतों और मुहावरों का प्रयोग करके अपने काव्य को सार गीर्जित करने के साथ-साथ प्रभावोत्पादक भी बना दिया है ।

सुफ़ियों के नज़दीक पीर अथवा मुर्शिद का अति महत्व होता है ।

हाफ़िज़ शीराज़ी ने अपने "दीवान" में गुरु की महत्वा इस प्रकार वर्णित की है-

"ब में सज्जादा रंगीं हुन, गरत पीरे मुगी गोयद ।

कि सालिक पे सबर न बुबद ज़िराहो रस्मे मीज़ल हा ॥"

अर्थात् यदि तेरा पीर [गुरु] तुझसे कहे कि तू अपना मुसल्ला [वह दरी जिस पर बैठकर नमाज़ पढ़ते हैं] शराब में रंग ले, तो तू रंग ले। क्योंकि वह [गुरु] उस मार्ग से बड़े ख़बर नहीं है जिस पर तू चलने वाला है। इसी बात को जायसी ने अपने शब्दों में यों कहा है -

बिनु गुरु पीध न पाइय, झूलेँ तों जो भेट ।  
जोगी सिद्ध होइ तब, जा गोरख तों भेट ॥

इसी प्रकार अन्य स्थान पर गुरु की महत्त्वा का वर्णन जायसी इस प्रकार करते हैं -

मारै गुरु, कि गुरु जियावै, और को मार १ मरे सब आवै ।  
सुरी गेलु, हीस्त करू घूरु, हौं नहिं जानों जाने गुरू ॥

क़ुरान शरीफ़ में वर्णित है कि वह ईश्वर मनुष्य की जीवन नाड़ी से भी अधिक उसके निष्पत्त है। इसी भाव को प्रकारान्तर से जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं -

रोइ बुझाई आपन हिथरा, कंत न दूर, अहै सुठि निथरा ।  
फूल बास, धिउ छीर जेठ, निथर मिलै एक ठाई ।  
तस जंता घट-घट कै, जिइऊँ अगिनि कँ साई ॥

अर्थात् पद्मजायसी कहती है कि मैंने रोकर अपने हृदय को समझाया कि स्वामी दूर नहीं हैं, बिल्कुल पास ही हैं [वह तो इस हृदय में ही बसते हैं]। जिस प्रकार फूल में सुगन्धि, दूध में घी एक ही स्थान पर मिले रहते हैं। उसी प्रकार मैं अपने शरीर में उसे मिलता समझीपिरह की अग्नि को सहन करती रही और उससे दग्ध नहीं हुई हूँ।

### जायसी की कृतियों में सूफी-विचार धारा

जन-श्रुति के आधार पर जायसी कृत षोढह रचनायें बताई जाती हैं, परन्तु इनमें से अभी तक केवल छः कृतियाँ ही प्रकाश में आ सकी हैं । अब तक उपलब्ध जायसी की जिन कृतियों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है, वे निम्नलिखित हैं -

- ॥ 1॥ गसलानामा
- ॥ 2॥ आखिरी काम
- ॥ 3॥ धिर रेखा
- ॥ 4॥ कहरा नामा
- ॥ 5॥ पद्मगावत
- ॥ 6॥ अखरावत

गसलानामा के अन्तर्गत जायसी ने उपदेशात्मक पंक्तियों की रचना की है, जिनमें लोक प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियाँ एवं सुमित्राँ सम्मिलित हैं । साथ ही इस्लामी विचार धारा, जो विषयों के माध्यम से जन-साधारण की भाषा में प्रचारित एवं प्रसारित की जाती थी, उसी को जायसी ने अपनी काव्यभ्य धाणी का रूप देकर उक्त ग्रन्थों के द्वारा जन-मानस तक पहुँचाने का सफल प्रयत्न किया है । इस्लाम-धर्मानुसार मनुष्य को कही प्राप्त होना है, जो उसके भाग्य में पहले से लिखा है । इसमें घट-बढ़ की कोई भी कल्पना नहीं की जा सकती -

होन हार सो होइ है, बहुत किये अभ्यास ।  
जोरा चाहे ताग दस्त, टूटहि ताग पचास ॥  
॥ गसलानामा ॥

"आखिरी कलाम" में यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि महा प्रलय के पश्चात् सभी प्राणी पुनः जीवित हों उठेंगे और उन्हें उस महा न्याय-कारी परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित होकर अपने जीवन कृत्यों [पाप तथा पुण्य कर्मों] का ज्वारा देना होगा। यह विश्वास इस्लाम धर्म सम्मत है, जिसे धिष्यती-परम्परा के सूफ़ियों ने अपने विचारों में प्रमुख स्थान दिया है तथा भारतीय जन-समाज में अपने विचारों का प्रतिपादन कराने के लिये, तथा जन-समाज को सद्मार्ग पर लाने के लिये, उन्हीं की भाषा में उन्हें व्यक्त किया है। मुसलमानों का दृढ़ विश्वास है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब अपने अनुयायियों को अन्त में स्वर्ग में भिजवाने में सहायक सिद्ध होंगे।

"अन्तिम महान्याय" के उपलक्ष में ऐसा दृढ़ विश्वास ही व्यथित व्यक्तियों को सान्त्वना प्रदान करता है। ऐसी स्थिति में व्यथित उसी मार्ग पर अग्रसर होना पसन्द करता है, जो अन्त में उसकी मुक्ति का साधन बन जाये। साथ ही अन्तिम महान्याय द्वारा उन लोगों को भयभीत किया गया है, जो अपने जीवन-काल में पाप आदि दूषणों में लिप्त रहते हैं। दुराचारी और पाषाण्डियों के लिये तो यह ऐसी अचूक औषधि है जो उन्हें दुराचारादि से रोकने में सहायक सिद्ध होती है।

अन्तिम महान्याय के दिन परमेश्वर तो न्याय-सिंहासन पर आसीन होगा और केवल पैगम्बर मुहम्मद साहब ही ऐसे होंगे, जो दुराचारियों और पापियों की मुक्ति कराने में ईश्वर से आग्रह करेंगे। इसी विश्वास को श्रेष्ठ नूरमुहम्मद ने यों व्यक्त किया है -

जहाँ रसूल अल्लाह पियारा, उम्मत को मुहताबन द्वारा ।

तहाँ दूसरों कैसे आवें, जच्छ असुर सूर जाग न आवें ॥

॥अनुराग बीसरी॥

जायसी का "आखिरी क़त्आम" छन्द काव्य है । इसमें अपनी उम्मत की मुक्ति के लिये मुहम्मद साहब द्वारा तीव्रतापूर्वक एवं व्याकुलता प्रदर्शित की गई है । इसके परिणामस्वरूप, दुराचारी, पापी तथा व्यथित लोगों के हृदय में मुहम्मद साहब के प्रति आशा, श्रद्धा तथा भक्ति का अतल विश्वास जीघ्र ही जन्मने लगता है । जायसी ने भी कड़ी कार्य किया है, जिसे पूर्ववर्ती धिक्कारी सम्प्रदाय के सूफी जनता को पाप कर्मों से रोककर सद्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते रहे हैं ।

आखिरी क़त्आम के अन्तर्गत जायसी ने उन सभी लक्ष्यों को प्रकट किया है जो महा प्रलय से पूर्व घटित होंगे । तत्पश्चात् प्रलय आने का वर्णन किया गया है, जिसमें न केवल समस्त प्राणी धरतु चारों फ़ीरिश्ते भी काल का ग्रास बन जायेंगे । उसके पश्चात् ईश्वर सभी को पुनर्जीवित करेगा । उस पूर सिरात का भी वर्णन है जिस पर से पुण्यात्मा सरलतापूर्वक गुज़र जाते हैं और पापात्मा पुल से नीचे गिर कर जल मग्न हो जाते हैं ।

तत्पश्चात् एक लाख चौबीस हजार पैग़म्बरों में से एक केवल मुहम्मद साहब ही अपनी उम्मत अनुयायियों के लिये व्याकुल प्रदर्शित लिये गये हैं । मुहम्मद साहब ही महान्याय के दिन सहायक सिद्ध होंगे । उन्हीं के द्वारा धिक्कारी होने पर ईश्वर लोगों को स्वर्ग में प्रवेश करने देगा । फिर लोग ईश्वर का दर्शन-लाभ प्राप्त करेंगे । सभी स्वर्ग में जाकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करेंगे । स्वर्ग के जीवन के सम्बन्ध में जायसी यों लिखते हैं -

नित पिरीत नित नव नव नेहू । नित उठि पौगुन होइ सनेहू ॥  
निततइ नित्त जो वारि दिया है । बीसों बीस अधिक ओहि पाहे ॥  
तहाँ न भीषु, न नीद दुख, रह न देह में रोग ।  
सदा अनन्द मुहम्मद, सब सुख माने भोग ॥ !आखिरी क़त्आम!



इस रचना में जायसी ने इस्लामी विचार धारा का सही चित्रण प्रस्तुत किया है, तथा ईश्वर जो सर्वशक्ति सम्पन्न है तथा सब कृष्ण उसी के सन्निहित मात्र से व्योदित होता है । इसे जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं -

भजन, गढ़न सँवारन, जिन खेला सब खेल ।

सब कीहँ टारि मुहम्मद, अब होइ रहा अकेल ॥

!आखिरी क्लाम!

इस प्रकार यह प्रकट कर दिया है कि केवल एक रव ही ऐसा है, जो निर्माण, पोषण तथा विनाश, तीनों करने में स्वयं सक्षम है । यद्यपि उक्त धारणा भारतीय अन्य धर्मों में नहीं है ।

जायसी ने आखिरी क्लाम के अन्तर्गत यह भी प्रकट कर दिया है कि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना केवल मुहम्मद साहब के प्रेम में की है । इस्लाम-धर्मानुसार ईश्वर ने अपनी परम उद्योगिता से सर्वप्रथम मुहम्मद साहब को उत्पन्न किया । फिर मुहम्मद साहब की परम उद्योगिता से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की । इस तथ्य को जायसी ने अपने काव्य में यों प्रदीक्षित किया है -

"जेहि हित सिरजा सात सगुंदा, सातहू दीप भो एक बुन्दा"

कुरान करीफ में आया है कि ईश्वर प्रकाश रूप है -

"अल्लाहो नूरुस्तमावासी कल अर्ज"

अर्थात् अल्लाह आसमानों और पृथ्वी का प्रकाश है । जायसी अपने काव्य में यों कहते हैं -

एक चमकार होइ उजियारा । छपे बीज तेहि के चमकारा ॥

चौद, सुरज छीप हैं वह जोती । रत्न पदारथ मानिक जोती ॥



इस्लाम धर्मानुसार सम्पूर्ण सृष्टि में केवल मनुष्य का स्थान ही सर्वोपरि है। अजरफ़ल मज़लूक़ात है। इस तथ्य को भी जायसी ने अपने काव्य के माध्यम से जन साधारण तक पहुँचाया है। "अल्लाहो बाकी गिन कुल्ले फ़ानी" के आधार पर यह दर्शाया गया है कि संसार की प्रत्येक वस्तु भंगुर एवं अस्थिर है तथा चिरस्थायी केवल ईश्वर ही है।

एक हदीस कुदसी<sup>1</sup> के अनुसार - "मैं छूपा हुआ एक ख़ज़ाना था, तो मेने इरादा किया कि पहचाना जाऊँ। परन्तु इन्सान और ज़िन्नात को पैदा किया ताकि वे मुझे पहचानें।"<sup>2</sup>

उपर्युक्त हदीस को जायसी ने अपने शब्दों में यों व्यक्त किया है -  
उसने ईश्वर ने जब स्वयं को देखने की इच्छा प्रकट की, तो दर्पण रूपी इस सृष्टि की रचना की, जिसमें उसी का रूप प्रतिबिम्बित है, उसी का वह सब खेल है।

भारत में पनपे अनेक मत-मतान्तरों, वाह्याह्वारों एवं अनेक अन्ध-विश्वासों पर क़ारार घात करके, जायसी ने केवल एक ईश्वर के प्रति अपने-अपने हृदयों में प्रेम उत्पन्न करने की आवश्यकता पर बत दिया है। यह प्रेम तत्त्व और विरह ही सूफ़ियों की अपनी निजी सम्पत्ति है। उनके अनुसार

1- हदीस कुदसी- पैगम्बर मुहम्मद साहब जो कुछ भी उपदेश देते थे, उन्हें हदीस ए-मुरीसल कहा जाता है। परन्तु ईश्वर की ओर से कोई भी उपदेश जो मुहम्मद साहब द्वारा व्यक्त किया जाता है, उसी को हदीस कुदसी कहते हैं।

2- "कुन्तो कन्ज़न मज़लीयन फ़ अरत्तो अन उअरफ़ा,  
फ़ज़लक़ुल्लुल्लु।" [हदीस कुदसी]

जो प्रेमाग्नि में जलते हैं, अपने प्रियतम के वियोग में व्याकुल होते हैं, अन्त में उन्हीं को वह परम प्रियतम प्राप्त हो जाता है । प्रस्तुत काव्य का सार तत्त्व भी वही है और इस रचना के माध्यम से जायसी ने यह स्पष्ट किया है कि प्रेमी को अपनी प्रेमिका **ईश्वर** को प्राप्त करने के लिये अनेक कष्टों को झेलना पड़ता है ।

महाकवि जायसी की प्राप्य रचनाओं में चौथी रचना "कहरानामा" है । सूफियों की अपनी निजी धरोहर "प्रेम-मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होते रहना" को व्यक्त करने के लिये ही जायसी ने जन-साधारण को उस मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया है । यह प्रेरणा ही प्रस्तुत काव्य का प्राण है । प्रेम-पथ की महत्त्वा का चित्रण दर्शनीय है -

जप तप बरत पाट और तीरथ संध्या करि सब छोड़ा रे ।

भगो न फल कबु औखन देखा, तब इस्के मज गाढ़ा रे ॥

जायसी की प्रस्तुत रचना अन्यायित मूलक है जिसके माध्यम से प्रस्तुत का वर्णन करके अप्रस्तुत को ही प्रधानता प्रदान की है । चित्र रेखा की अपेक्षा प्रेम की गहरी अनुभूति "कहरानामा" में पाई जाती है । जायसी ने यद्यपि अपनी इस रचना में कहार के कर्मों **नाच चलाना, मक्खली पकड़ना, डोली उठाना, घर के काम काज करना आदि** का वर्णन किया है । परन्तु केवल अन्यायित पूर्ण अर्थ लेने पर ही जायसी अपने उद्देश्य में सफल होते हैं । इस रचना का आध्यात्मिक अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि मनुष्य को आजीवन निरन्तर कार्यशील रहना चाहिये तथा परिणाम को विधाता के ऊपर छोड़ देना चाहिये । श्रौंगिक जो कुछ उतने भाग्य में लिखा है, उससे हटकर एवं उससे घट-बढ़ कुछ भी होने वाला नहीं है । इस्लाम धर्म के अनुसार इसी को तक्दीर कहा जाता है।

स्पष्ट किया है कि

आगे जायसी ने प्रियतमा के विधाहोपरान्त जब वह प्रियतम के घर चली जाती है तो अपने प्रेम और निष्ठा से उसी में लय हो जाती है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य प्रेम-मार्ग में आई अनेक बाधाओं को झेलता हुआ अपनी अटूट लगन तथा गुरु-कृपा से उस परम प्रियतम [ईश्वर] को प्राप्त कर लेता है । प्रेम के पथ पर चलने के लिये इन्द्रिय संयम की अति आवश्यकता पड़ती है -

प्रेम राज जो करहु पिआई, साथी पाँच सँभारेहु रे ।  
बरजत रहेहु होइ जन करकस गरिबह कीर शिखोरहु रे ॥

इस संसार में जो भी सत्कर्म करेगा, वही मृत्यु-उपरान्त उस लोक [परलोक] में सुख प्राप्त कर सकता है । इस इस्लामी धारणा को जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं -

जै म्हम्हद सोई तुहागिन, जो रेसे पिबरावै रे ।  
नेहर केरि होइ गुनचन्ती, सो ससुरे सुख पावै रे ॥

सूफी-जगत में गुरु-गहत्वा पर अत्यधिक बल दिया गया है । बिना गुरु के आगे बढ़ना असम्भव है -

जै म्हम्हद, सोई मूलगद, सोई औषधि, सोई पीरा रे ।  
ताहि सँभारहु, आपहु तारहु, गुन गहि लावहु तीरा रे ॥

इस्लाम धर्म में धर्मित कार्यों को करने वाला व्यक्ति परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त नहीं कर सकता । जो व्यक्ति विधी-विधान के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, वही परमेश्वर तक पहुँच सकता है । जैसा कि जायसी के शब्दों से स्पष्ट है -

जै म्हम्हद दोऊ जग तरिधे, लीन्हें पिय के आयसु रे ।  
जोहि जोहि मारग बरजे साजन तेहि मारग जनि जायसु रे ॥

इस्लाम धर्म के अनुसार ईश्वर वाहिद [अकेला] है । उसी अन्योन्य-  
मित परक वाणी में जायसी कहते हैं -

"दूइ दुइ जाइ जन्म सब जोरा, आपुहि रहा अकेला रे ।"

अल्लाह की वहदानियत [इच्छा] पर बल देते हुये जायसी अपने  
मत का प्रतिपादन इस प्रकार करते हैं -

वहै महरमद तज्हु तेत्वाद् जो एम्हु चित बीधा रे ।  
सोचि जो दोसरि पाउ बीसरि अस रहु पिय के राधा रे ॥

मानव-जीवन का सार यही है कि वह सब कुछ त्यागकर केवल  
उसी के प्रेम में लीन हो जाये और स्वयं को समर्पित कर दे -

"सेवा करे, रहे कर जोरे, प्रीतम फल-रस पाखी रे"

प्रस्तुत रचना के माध्यम से जायसी चाहते हैं कि मनुष्य सच्चे मन  
से उस ईश्वर से प्रेम करे, तभी वह उसका सानिध्य प्राप्त कर सकता है ।

जायसी की अगली रचना पद्मावत है । इस प्रेमाख्यानक रचनामें  
राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती के नाम मात्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण  
कथानक कल्पित है । यदि काव्य को दो भागों में विभक्त कर लिया जाये  
तो ज्ञात होता है कि उत्तरार्ध की कथा में इतिहास के तत्त्व सम्मिलित हैं।

जायसी की कृतियों में केवल "पद्मावत" ही ऐसी रचना है जो  
व्याख्या का स्थान रखती है और इसी ने हिन्दी-जगत में आध्यात्मिक  
प्रसिद्धि भी अर्जित की है । इसकी सम्पूर्ण कथा आध्यात्मिक आधार पर  
टिकी हुई है । जायसी की इस रचना में अन्योन्य एवं समासोन्नत दोनों  
ही प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं, जिसके गुण विवेचन पर प्रारम्भ में ही

विचार करके जायसी की विचार धारा से अवगत करा दिया गया है ।

महाकवि जायसी की कृतियों में एक रचना "अखरावट" की है । इसमें कवि जायसी ने एक हदीस की ओर संकेत किया है, जो हदीस कुदसी के नाम से जानी जाती है । हदीस कुदसी से तात्पर्य ऐसी हदीस से है, जिसमें वाणी तो पैगम्बर मुहम्मद साहब की होती है, परन्तु सन्देश ईश्वर का ही होता है । इसके अपेक्षा एक और हदीस होती है जिसे हदीस गुरसिल कहते हैं । इससे तात्पर्य है कि मुहम्मद साहब ने अपना निजी सन्देश अपनी ही वाणी में व्यक्त किया हो । इन दोनों हदीसों में हदीस कुदसी का महत्व अधिक माना जाता है । जिस हदीस कुदसी की ओर कवि जायसी का लक्ष्य है, वह निम्नीलिखित है -

"कुन्तो कन्ज़न मङ्गुफ़ीयन फ़ारस्तो अन आरफ़ा फ़ज़लक़तल ख़ल्क"

अर्थात् मैं छुपा हुआ ख़जाना था, तो मैं इरादा किया पहचाना जाऊँ । अतः इन्सान व ज़िन्नात को पैदा किया । ताकि वे मुझे पहचानें ।

अपनी रचना अखरावट के प्रारम्भ में कवि ने इसी ज़ुन्यावस्था का वर्णन किया है - कवि कहता है कि ऐसे समय जब न तो आकाश ही था, न पृथ्वी थी और न सूर्य-चन्द्रमा आदि थे । ऐसे अधिकारमय वातावरण में ईश्वर ने सर्व प्रथम पैगम्बर मुहम्मद के नूर [ज्योती] की रचना की ।<sup>1</sup> तत्पश्चात् चारफ़रीशतों [जिबराईल, मीकाईल, इज़राईल तथा इस्राफ़ील] को पैदा किया । इन चारों ने चार तत्त्व [धूम्र, जल, पावक एवं वायु] ग़िलाफ़

1- "अब्बलो मा ख़ल क़ल्लाहो नूरी" [हदीस नरक़ानी] अर्थात् अल्लाह ने सर्व प्रथम मेरा नूर पैदा किया । यह हदीस गुरसिल है ।

आदम का पुतला तैयार किया । ईश्वर ने इसमें प्राण फूँके और फिर फ़रिश्तों को आदेश दिया कि चार फ़रिश्तों के पश्चात् प्राण फूँकने से पूर्व पैदा किये जा चुके थे कि आदम के सामने सजदा नतमस्तक होना करें । इबलीस नामी फ़रिश्ते के अलावा सभी ने आदम को सजदा किया । तत्पश्चात् हव्वा की रचना की गई । फिर दोनों को स्वर्ग में निवास करने भेज दिया और आदेश दिया कि अमुक वृक्ष का फल न खाना । दुर्भाग्यवश शैतान के बहकावे में आकर उन्होंने वर्जित फल का तेवन कर लिया । परिणाम स्वरूप ईश्वर ने उन्हें स्वर्ग से निशाल दिया । दोनों एक दूसरे से बिछड़ गये । काफी समय विवोगावस्था में व्यतीत करने के पश्चात् ईश्वर की कृपा से वे फिर एक बार मिले । इन दोनों के पुनर्मिलन के तैयार में जो जन-पुत्र हुई उन्हें ही आदमी (आदम से अर्थात् आदम वाला) की संज्ञा से विभूषित किया गया । अतः संसार के सभी स्त्री-पुरुष आदम की ही सन्तान होने के कारण आदमी कहलाते हैं ।

महाकवि जायसी ने फिर इस शरीर की तुलना ब्रह्माण्ड से की है। इस शरीर में पुल तिरात, स्वर्ग, नई, सूर्य, चन्द्र, दिन रात आदि सभी हैं । हिन्दू धार्मिक शास्त्रों में भी इस शरीर को ब्रह्माण्ड का अनुल्प घोषित किया है—

“यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे”

इस शरीर लपी सदन में पंच तत्वों का भी वास है । इन तत्वों (आम, क्रोध, लोभ, मोह) से बचने के लिये आवश्यक है कि प्राणी सदा —

1- हिन्दू धर्मानुसार शरीर की रचना पंच तत्वों से मिलकर हुई है —

क्षिति जल पावक गगन समीरा ।

पंच तत्व हैं रचे सररीरा ॥ शोस्वामी तुलसीदास

जायसी ने आदम की रचना में चार तत्वों का विवरण इस लिये दिया है कि इससे पूर्व में पंचम तत्व गगन की रचना हो चुकी थी और उसका अस्तित्व पहले से था ।



साधन रहे । क्योंकि मानव अपने मन की क्लृप्तिता को दूर करने में उस परमेश्वर का दर्शन कर सकता है । जायसी ने मानव-मन को दर्शन के सामान बताया है, जिस पर धूल आ जाने के कारण स्पष्ट दिखाई नहीं देता । स्पष्ट दर्शन के लिये दर्पण पर छाई गन्दगी को दूर करना परमावश्यक है । ठीक इसी प्रकार मन की क्लृप्तिता आदि विकारों को दूर लिये देना उस परम ज्योति के दर्शन असम्भव है । कोय ने इस संसार को सारहीन घोरिगत किया है । इसे त्याग कर तथा जप-तप द्वारा ईश्वर का साविध्य प्राप्त किया जा सकता है ।

कोय ने "अधराष्ट" में गुरु की महत्वा को प्रदर्शित करते हुए गुरु-शिष्य-संवाद प्रश्नोत्तर रूप में वर्णित किया है ।

शिष्य द्वारा पूछे गये प्रश्नों द्वारा बहुत ही विस्तृत समस्याओं का समाधान किया गया है । इस रचना के माध्यम से जायसी ने, हस्तगत धर्म पर पूरी आस्था रखते हुये, साधना-क्षेत्र में अपने अनुभवों को सिद्धांत रूप में प्रस्तुत किया है ।

जायसी का काव्य सामान्यतः प्रेमाख्यानक काव्य है, जिसका मूल लक्ष्य प्रणय-भाषना है । इसमें लौकिक एवं अलौकिक दोनों ही पक्षों का समतुल्य सांगठित्य स्थापित किया गया है ।

7- उपसंहार

### उपसंहार

इस्लाम धर्म के आविर्भाव से पूर्व सैकड़ों वर्ष से भारत और अरब के संबंध किसी न किसी माध्यम से ब्रूखलाव रहे हैं । यह माध्यम चाहे व्यापार संबंधी रहा हो अथवा सांस्कृतिक । इस प्रकार इन संबंधों के आधार पर अरबों एवं भारतीयों के मध्य शैक्षिक, सांस्कृतिक आर्थिक और व्यापारिक आदान-प्रदान होता रहा है । इस्लाम धर्म के आविर्भाव के समय से निरंतर इन संबंधों में दृढ़ता आई है ।

अरब के व्यापारी इस्लाम धर्म में दीक्षित होने के उपरान्त जब भारत आये तो भारतीयों को उनमें कोई विशेष अजनबीपन देखने को नहीं मिला । इसका कारण यह था कि भारतीय अरबों के आचार-विचारों एवं व्यवहार से भलीभाँति पूर्व-परिचित थे । इन व्यापारियों ने अपने व्यापार के साथ-साथ इस्लाम धर्म का प्रचार भी किया जिससे प्रभावित होकर भारत वासी इस्लाम धर्म में शीघ्रता से दीक्षित होने लगे । इन व्यापारियों के द्वारा इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आयी । इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार में उनका पूर्व परिचय <sup>सहायक</sup> बहुत/तिष्ठ हुआ । साथ ही इस्लाम धर्म के विविध विधानों में जो आकर्षण था वह भारतीय जनता को न केवल नवीन वस्तु उत्साह पूर्वक भी लगा ।

इस्लाम धर्म के आगमन के समय तक भारत में सुआयुत जैनीय एवं वर्णव्यवस्था की जड़ें बड़ी ही गहराई तक पट्टी चुकी थीं । जातीयता के बन्धन में जड़ों जनता त्राहि-त्राहि करके निरुप्राण सी हो गई थी । "सर्वजन समान" की नीति ने इन निरुप्राण भारतीयों में नए तारे से प्राण फूँक दिए । यद्यपि भारत में मुसलमानों का राज्य भी स्थापित हो गया था, परन्तु उनका

यह प्रभाव जन साधारण पर नहीं पड़ा था, जो मुस्लिम फकीरों का पड़ा था। यदि यह कहा जाए कि भारत में मुसलमान शासकों ने केवल सरतल ग्रहण की थी, जबकि इस्लाम धर्म भारत में मुस्लिम सूफी सन्तों के द्वारा आया था, तो अतिशयोक्ति न होगी। भारतीयता तो यह है कि मुस्लिम शासक धर्म धर्म से उतना ही दूर रहा जितने कि मुसलमान सूफी राजनीति से।

यह अलग बात है कि ये शासक इस्लाम धर्मावलम्बी थे, परन्तु निरु-संदेह इस्लाम धर्म के प्रचारक एवं प्रसारक नहीं थे। इस्लाम धर्म के प्रचार एवं प्रसार में भारतवर्ष में ही क्या पूरे विश्व में इस्लाम धर्मावलम्बी फकीरों का ही हाथ रहा है। इन्होंने इस्लाम धर्म के विधि-विधानों एवं नीतियों को, देश एवं काल के अनुसार वहीं के निवासियों के अनुरूप वातावरण तैयार करके और उन्हीं की भाषा अपनाकर जन साधारण के सामने रखा था, जिसको ग्रहण करना वहीं के जनमानस को असुविधा प्रतीत नहीं हुआ। यदि शासक वर्ग धर्म के प्रचार एवं प्रसार में रुचि दिखाता तो कोई कारण नहीं कि आज पूरा <sup>भारत</sup> मुसलमान दिखाई न देता। कारण स्पष्ट है कि शासक वर्ग केवल शासक में एवं राज्य के विस्तार में तथा उसकी सुरक्षा में ही रुचि रखता था। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि शासक वर्ग में ऐसी जालीनता, नम्रता, दयालुता, समानता एवं प्रेम की भावना न थी जैसी कि सूफी वर्ग में थी, जबकि भारतीय जनता को इन्हीं गुणों की तलाश भी थी। ये समस्त गुण एक साथ केवल सूफियों में ही दृष्टिगोचर होते थे। यही कारण था कि जिस क्षेत्र में भी इन सूफियों ने अपनी खानकाहें स्थापित कर लीं, वहीं लोगों की भीड़ इकट्ठा होना प्रारंभ हो गई। ऐसे ही गुण संपन्न सूफियों में हम विश्वविद्यालय सम्प्रदाय के एक सन्त कुवाया मुईनुद्दीन हसन अजमेरी को पाते हैं।

हुवाणा मुईनुद्दीन हसन अजमेरी ने भारत में आने के पश्चात्, कुछ तोष समझकर अजमेर को ही अपना स्थायी स्थान चुना, जहाँ सम्-सामयिक राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान का शासन था । वह स्थान परंपरागत रीढ़ियों का गढ़ था । यद्यपि प्रारम्भ में हुवाणा मुईनुद्दीन हसन पिशती को अजमेर में कुछ कीटनाश्यों का सामना अवश्य करना पड़ा, परन्तु उनके सदाचार, प्रेमवाचक एवं उदार प्रवृत्ति ने उन कीटनाश्यों पर-जीघ्र-ही विजय प्राप्त कर ली और क्षेत्रीय जनता हुवाणा को अपना हिताधी समझने लगी । परिणाम स्वरूप हुवाणा मुईनुद्दीन जीघ्र ही जनता में भ्रष्टा के पात्र बन गये । श्री नर्मदेश्वर घटुवेदी<sup>1</sup> के शब्दों में, यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है - "यह एक विलक्षण विरोधाभास है कि जिस जाति का सत्ता धारी वर्ग अल्प बल द्वारा जय-यात्रा का अभिमान कर चुका था, उसी जाति का एक समुदाय आत्मबल के सहारे पीड़ित और प्रताड़ित जनता के घरों में प्रेम का सन्देश पहुँचा कर उन्हें सान्त्वना द्वारा वशीभूत कर रहा था । उसकी सफलता का रहस्य इसी में है"।

हुवाणा मुईनुद्दीन हसन पिशती के शिष्यों में सभी वर्ग एवं श्रेणियों के लोग शामिल होकर शिष्यत्व ग्रहण कर चुके थे जिन्होंने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस्लाम धर्म की सेवा तन-मन और धन से पूरी निष्ठा के साथ की थी । प्रमुख रूप से हुवाणा कुतुबुद्दीन बख्तखान काकी तथा हुवाणा हमीदुद्दीन नागौरी के नाम उल्लेखनीय हैं । इन महानुभावों ने भारतीय वातावरण के अनुकूल अपने को ढाल लिया था । जन साधारण की भाषा को ही इन्होंने अपनाकर अपनी बात उनके समक्ष कही । जितने सरलता पूर्वक सामायिक जनता ने अंगीकार करके अपने आपको परम्परागत रीढ़ियों के बंधन से मुक्त कर लिया । इन सुषिष्यों का तो सिद्धांत ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा "बसुधैव कुटुम्बकम्" था । इस्लाम धर्म के अनु-

सार सभी जन समान हैं और रंग-भेद, जाति-भेद तथा धर्म-निर्धन के आधार पर उनमें कोई अंतर नहीं है। ईश्वर की दृष्टि में यही मनुष्य प्रिय है जो सदा-चारी है और प्राणी मात्र के साथ उदारता का व्यवहार करता है। इस्लाम के यही आकर्षण थे जो ज़िद्द ही विभिन्न मतावलम्बी-जन-समुदाय को एक सूत्र बंध कर सके तथा जिनमें परस्पर भाईचारे की भावना का उदय कर सके।

इस्लाम धर्म की यही विशेषता न केवल भारत में वरन् पूरे विश्व में अपना प्रभाव स्थापित कर चुकी थी। यही कारण है कि इस्लाम धर्म का अनुयायी विश्व के किसी भी भूखंड में क्यों न निवास करता हो सदा एक दूसरे को अपना निकट का एवं भाई मानता है। भारत वर्ष में जहाँ जन्म के आधार<sup>पर</sup> मानव-समाज को चार वर्गों में विभाजित कर दिया गया था, और जिससे ऊँच-नीच की भावना को अत्यधिक बल मिला था, वहीं इस्लाम धर्म ने मानव-समुदाय के विभिन्न वर्गों को केवल परिषद मात्र के लिए विभिन्न नामों से तो पुकारा, परन्तु उनमें ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव उत्पन्न नहीं होने दिया।<sup>1</sup> हजारों वर्षों से प्रताड़ित मानव के ऊपर इस इस्लामी विचार धारा ने रामबाण का कार्य किया। परिणाम स्वरूप अपनी आरीरिक तथा मानसिक दासता की बेड़ियों को तोड़कर इस्लाम के स्वतंत्र समाज में प्रवेश करते उसे देर न लगी।

इस्लाम धर्म के इन गुणों को लेकर यह सूफ़ी ही भारत आये थे और इन्हीं सूफ़ियों ने क्षेत्रीय भाषा में अपने विचार जन-समुदायों के समक्ष रखे। शिष्टी समुदाय की यद्यपि अनेक शाखाएँ भारत वर्ष में विकसित हो गईं लेकिन उनके विचारों में समान रूप से उदारता, प्रेम, सहिष्णुता निरंतर बनी रही। उन्होंने लोक-प्रचलित कथाओं के माध्यम से अपने विचारों का प्रतिपादन किया। यद्यपि यह सूफ़ी अन्य लोगों को तो सदाचार तथा भाई चारे का पाठ ही पढ़ाते थे।

1- "इन्नमा अकरमोकुम् इन्दल्लाहे अतफ़ाकुम्"। सूरत-हज़रात, आयत 13 की।  
जुम में सबसे ज़्यादा मुअज़ज़ अल्लाह के नज़दीक वह बहुत है, जो सबसे ज़्यादा मुत्तकी व परहेज़गार है।

परन्तु उन्होंने अपने लिए कुछ नियम बना रखे थे, जो इस्लाम-सम्मत थे । जैसे खुदा परस्ती के लिए कार्य करना, खुदा के नाम पर सर्वस्व त्याग, भोग विलास को तिलीजिल देना, स्वार्थ परक बातों से विमुख रहना, धन का लोभ न करना, समाज में रहकर सामाजिकता से दूर रहना तथा घोर तपस्या करना इत्यादि । इनको तो "खाली हाथ तथा खाली गात" रहना ही प्रिय था सुफियों की जीवन पर्याय यद्यपि इस्लामी विधी-विधानों से जकड़ी हुई नहीं है, फिर भी उनके जीवन का प्रमुख अंग नैतिकता है । उन्होंने नफ़सकूबी अथवा इन्द्रिय-दमन को प्रमुख स्थान दिया है, क्योंकि बिना इन्द्रिय-दमन के ईश्वर की मोक्ष नहीं हो सकती । इस संबंध में पैगम्बर मुहम्मद साहब की हदीस "तेरा सबसे बड़ा शत्रु तेरा नफ़स है, जो तेरी दोनों बगलों के मध्य स्थित है" । इन सुफियों ने अपने नफ़स के दमन करने का भरसक प्रयत्न किया है । सुफियों के अनुसार आत्म-संयम मनुष्य की अंतरात्मा के नैतिक परिपक्वता की क्रिया है ।

भारत वर्ष में आने के पश्चात् यद्यपि उनको यहाँ की जलवायु, वातावरण परम्पराएँ एवं धार्मिक विचार धारा, सभी कुछ ऐसा था जो उनके पूर्व जीवन से मेल नहीं खाता था । समन्वय एवं भाईचारे की भाषना से ओत-प्रोत इन तद्-जनों ने अपने विचारों को क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार ढाल कर प्रस्तुत किया था । इन सुफियों ने रामन्दहीम की एकता पर बल दिया था तथा वे उपदेश जो कुरआन में दिए गए थे, अन्हीं के समन्वय तथा वैसे ही भाषों से पूर्ण श्लोकों को वेद, उपनिषद् तथा अन्य भारतीय धर्मशास्त्रों में ढूँढ निकाला जिससे भारतीय एवं अभारतीय के बीच की वैमनस्य लपटी खाई को पाटा जा सके । इन सुफियों के इस प्रयत्न से इतना अवश्य हुआ कि लोग एक दूसरे के अधिक निकट आने लगे तथा एक दूसरे से विचारात्मक आदान-प्रदान करने लगे । परिणामस्वरूप भार-

---

1- "आदा कुं नफ़सकल्लती बईना जम्बैक" हदीस

तीय विचारधारा का प्रभाव सूफी मत पर पड़ना भी अवश्यभावी था । सूफियों ने सामान्यतः उन्हीं भारतीय विचारों को अपनाया जिनका इस्लामीकरण से सरलता पूर्वक कर सके । कारण यह था कि वे सूफी अपने आपको इस्लाम धर्म के मौलिक विचारों से पृथक् करना नहीं चाहते थे, जैसा कि हमें देखने को मिलता है कि यदि इन सूफियों ने लोक प्रचलित किसी कहानी को यदि अपनी काव्यमय वाणी से उच्चरित किया है, तो अन्त में अथवा किसी और प्रकार से अपने मत का भी प्रतिपादन अवश्य कर दिया है । इसका प्रबलत उदाहरण अन्य सूफियों के साथ-साथ हम जायसी [मौलिक मुहम्मद जायसी] में मली-मलीत प्राप्त कर सकते हैं । इन सूफियों को यों तो अपने मत के प्रतिपादन में समय-समय पर समाज के अन्य समुदायों से बड़ी टाकर लेनी पड़ी है । इन्हीं पर भी इन साहसी एवं सुदृढ़ मतावलम्बियों ने भरसक प्रयत्न करके भाई बारा एवं सामन्तस्य स्थापित करने का जो प्रशंसनीय कार्य किया है वह विरहे ही अन्यत्र देखने को मिलता है ।

भारत वर्ष में हिन्दू-मुस्लिम भाईघारे को सुदृढ़ करने के लिए इन्होंने उन अनेकों मन्त्रों एवं विचारों को भी स्वीकार कर लिया जो इस्लाम धर्म के मूल सिद्धान्तों से टकराते नहीं थे तथा इस्लाम धर्म के रहस्य वादियों ने जिनका विवरण अपने लेखों अथवा काव्यों में किया है । उदाहरणार्थ अद्वैतवाद, जो वेदों एवं उपनिषदों में विस्तार पूर्वक समझाया गया है, तथा उस पारब्रह्म परमेश्वर की सत्ता का आभास सृष्टि के व्य-व्य में किया है । इसी प्रकार का भाव इन सूफियों ने कुरआन शरीफ एवं हदीसों में भी तलाश करके धार्मिक भेदभाव को दूर करने की चेष्टा की है । तैत्तरीयोपनिषद् भृगुवल्गी के प्रथम मंत्र में उस ब्रह्म के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है—

वस्य का सुप्रसिद्ध पुत्र भृगु अपने पिता वस्य के पास गया और बोला, "भगवन् । मुझे ब्रह्म का बोध कराइए" । उससे वस्य ने यह कहा—अन्न, प्राण, नेत्र,



श्रोत्र, मन और वाक्। ये ब्रह्म की उपलब्धि के द्वार हैं। फिर उससे कहा- जिससे निष्पन्न ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं। उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर, जिसमें ये लीन हो जाते हैं, उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा कर, वही ब्रह्म है।<sup>1</sup> एक दूसरे मन्त्र में भी इसी प्रकार कहा गया है -

“वही उद्गम स्थल है जिससे सब उत्पन्न होते हैं और उसी में सब लौट जाते हैं।”<sup>2</sup>

ठीक इसी भाव से मिलते जुलते भाव ऋषि तुल पुण्ड के समर्थक सूफियों ने भी प्रस्तुत किए हैं। उनके अनुसार-सम्पूर्ण सृष्टि का उद्गम एक ही है और वह उसी की ओर पलटने वाली है उन्होंने अपने विचारों को कुरआन करीफ की इस आयत से उद्धृत किया है “हम सब अल्लाह के ही हैं और हम सबको उसी की ओर पलटना है।”<sup>3</sup>

ऋषि तुल पुण्ड के मानने वालों में सर्वोपरि इब्नुल अरबी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने “इमाओस्त” सब कुछ वही है, कहकर इस सिद्धांत को प्रतीपादित किया है और कहा है कि परमात्मा ही एकमात्र सत्ता है और सभी इसकी प्रतीच्छाया मात्र हैं, जो लौटकर उसी में मिल जाते हैं।

1- भृगुवे वारुणिः धत्वा पितरमुपसत्तार अधीहि भगवो ब्रह्मोति । तस्मा एतस्यो-  
वाय । अन्नं, प्राण यक्षुः श्रोत्रं मनो वक्ष्यमिति । त होवाय । यतो वा इमानि  
भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिर्लविञ्चन्ति । तस्मि-  
न्निज्ञासत्य । तद् ब्रह्मोति ।

2- “सर्वं योनिः सर्वस्य प्रभु वाच्यया हि भूतानाम्”  
गौरखपुर।

3- “इन्नालिल्लाहे व इन्ना इलेहि राजेऊ”। सुरा-अलबक़र, 156 कुरआन करीफ़।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि "जो रंग, रूप आदि से रहित होकर भी छिपे हुए प्रयोजन वाला होने के कारण विविध शक्तियों के सम्बन्ध में सृष्टि के आदि में अनेक रूप, रंग धारण कर होता है तथा अन्त में [यह सम्पूर्ण विश्व जिसमें किहीन भी हो जाता है] वह परमदेव एक [अद्वितीय] है वह हम लोगों को कृम बुद्धि से संयुक्त करे ।"

इसी से मिलता मिलता भाव एक सूफी के शब्दों में - "क्या ही की-हीन सत्ता है जो दस सहस्र रूपों में प्रकट होती है ।"<sup>2</sup>

इधर फिर औपनिषद् विचारधारा के अन्तर्गत तैत्तिरीयोपनिषद् में फिर इस परम सत्ता के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है [वह] एक देव ही सब प्राणियों में छिपा हुआ है, सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्गामी परमात्मा [वही] सबके कर्मों का अधिष्ठाता सम्पूर्ण भूतों का निवास स्थान, सबका साथी चेतन स्वरूप सर्वत्र विबुध और गुणातीत है ।<sup>3</sup>

एक और दूसरे स्थान पर - "इसी से विश्व उत्पन्न होता है और इसी में लीन हो जाता है ।" [अस्मादि जायते विश्वमग्नेय प्रविर्तीयते]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम-सम्मत एकेश्वरवाद के साथ-साथ निराकार एवं निर्विकार ब्रह्म का निरूपण जैसा कि उपनिषदों में प्रस्तुत किया है उसे भी सूफियों ने अपनाने में किसी भी प्रकार का संकोच नहीं किया है । मुसलमान तथा मुसलमानेतर दोनों को निरुद्ध करने में इन सूफियों ने जहाँ कुर-आन शरीफ का सहारा लिया है, वहीं पर वेदोपनिषदादि में भी अपने मतलब

1- य एकोऽव्ययो ब्रह्मा शक्तियोगात्मानि नेकाग्निहिताथो दधाति ।

वि चैति चान्ते विश्वमग्नेय स देवः सनो ब्रह्मा शुभ्रा संयुक्त ॥

2- "मतालिखे रशीदी" पृष्ठ-51

[श्वेताश्वतर-अध्याय 4-1]

3- एको देवः सर्वभूतेष्वुद्गः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षी चैता केवलो निर्गणश्च ॥

[श्वेताश्वतर-अध्याय 6-11]

की बात दूँ ही निकाली है - "वह हाथ पैर से रहित होकर भी देगवान तथा ग्रहण करने वाला है, नेत्रहीन होकर भी देखता है तथा कर्ण रहित होकर भी सुनता है । वह सम्पूर्ण वेद-धर्म को भी जानता है, किन्तु उसे जानने वाला कोई भी नहीं है । उसे {श्रुतियों ने} सबका आदि, पूर्ण एवं महान कहा है ।"<sup>1</sup>

श्वेताश्वर उपनिषद् के ही एक अन्य मन्त्र में - "लोक में उसका कोई स्वाामी नहीं, न कोई शासक या उत्तम पिन्हे ही है । वह सबका कारण है और इन्द्रियाधिष्ठाता जीव का स्वामी है । उसका न कोई उत्पत्तिकर्ता है और न स्वामी है ।"<sup>2</sup>

लगभग वही अर्थ रखते हुए सुफ़ियों ने कुरआन करीफ़ से भी एक सूरा का फ़यन किया है - "वहो वह अल्लाह है, यक़ता {बिल्कुल अकेला} अल्लाह सबसे बिरपेक्ष है और सब उसके मोहताब है । न उसकी कोई संतान है और न वह किसी की संतान है, और कोई उसका समकक्ष नहीं है ।"<sup>3</sup>

एक और स्थान पर कुरआन करीफ़ में - "और वहो कि पुछता है उस अल्लाह के लिये जिसने न किसी को बेटा बनाया और न कोई राज्य ही में उसका साझीदार है और य {वह} बेबस है कि कोई उसका पूछ पोंछ हो और उसकी बढ़ाई बधान करो, उच्चकोटि की बढ़ाई ।"<sup>4</sup>

1- अपाणिमादौ जवनौ गृहीता पश्यत्यपशुः स शृणोत्यवर्णः ।

स वेत्ति त्वेधं न य तस्यैस्ति वेत्ता तमाहुः श्रेयं पुरुषं महान्तम् ॥

2- न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चाश्रिता नैव य तस्यैस्ति भग्नः ।

स कारणं करणाधिपानिधौ न चास्य कश्चिद्व्यनिता न चाधिपः ॥

3- कुस एव अल्लाहो अहद, अल्लाहुस्तमद । लग्नयल्लि वलमशुलद व लग्नयकुल्लह  
कुफ़ोवन अहद ॥ सूरा-अल इक़लास, कुरआन करीफ़ ॥

4- "व कुल्लिल हम्दौ तिल्लाहिल्लफ़ी लम यत्तालिज़ वलदऊ व लग्न य कुल्लह  
शरीक़ पिस्तमुल्के व लम य कुल्लह वलीयुम मिनफ़ुल्ले व कब्बिरहो तकबीरा ।"

{सूरा-बनी इसराईल सूख-12, कुरआन करीफ़}

सूफियों के समन्वयादी कारनामों में सहायक सिद्ध होने वाली सामग्री का कुछ अंश मात्र ही उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया गया है जो उपनिषदों तथा पुराण ग्रंथों से उद्धृत किया गया है । इस भाषना के पीछे लगभग सभी सूफ़ी थे । पिछती सम्प्रदाय के सूफ़ियों में यह भाव अपेक्षाकृत अधिक ही थे । यही कारण है कि भारतवासी उनके निकट आने में तथा उनके मार्ग को अपनाने में अधिक लीज दिखाने लगे थे । परिणाम यह हुआ कि हिन्दू एवं मुसलमान एक दूसरे के अधिक निकट आये और एक दूसरे को आत्मीयता की दृष्टि से देखने लगे । आज <sup>भौतिक</sup> साधारण में उनके प्रति उतना ही आकर्षण पाया जाता है जो उनके मज़ारों पर मेलों की शुरुआत में भलीभाँति देखा जा सकता है । भारतवासीयों के दिलों को जीतने में मुसलमान शासकों का कोई हाथ नहीं था । भारत भूमि पर अधिकार <sup>भौतिक</sup> ही कर लिया हो पर भारतवासीयों के हृदय पर अधिकार केवल और <sup>भौतिक</sup> इस सम्प्रदाय के सूफ़ियों ने ही प्राप्त कर लिया था ।

भारत वर्ष में आपसी मेलजोल, भाईचारा और आत्मीयता की स्थापना केवल इन्हीं सूफ़ियों के व्यवहारिक आधार पर ही सकती है । इन सूफ़ियों ने रंग-भेद, धनी-निर्धन आदि का अन्तर न करते हुए सभी को समान एवं एक ही परमपिता सन्तान माना है । इनके मतानुसार सब उसी पारब्रह्म परमेश्वर की रचना है और इस प्रकार हम में आपस में कोई भेद नहीं अर्थात् सब परस्पर समान हैं, न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा । देखा जाए तो यही मुख्य रूप से इस्लाम धर्म की शिक्षा भी है ; जिसका प्रचार एवं प्रसार सूफ़ियों ने अपने दम से भारतवर्ष में किया था ।

## 8- परिशिष्ट

[अ] सहायक ग्रन्थ-हिन्दी

[ब] सहायक ग्रन्थ-उर्दू-फ़ारसी

[स] सहायक ग्रन्थ-अंग्रेज़ी

**सहायक ग्रंथ सूची हिन्दी**  
=====

**परिशिष्ट**

- ॥ 1॥ "अलबेलनी का भारत" अनुवादक श्री रजनी कान्त शर्मा एम.ए., आदर्श हिन्दी पुस्तकालय मालवीय नगर, इलाहाबाद, मार्च सन् 1967 ई०
- ॥ 2॥ "अलखानी" शेख अब्दुल क़ुदुस गंगोही कृत सरदनामा का हिन्दी अनुवाद तथा सम्पादन, डा० अहमद अब्बास रिज़वी, डा० शैलेश ज़ेदी, भारत प्रकाशन मंदिर अलीगढ़, 1961 ई०
- ॥ 3॥ "अमीर खुसरो" डा० मलिक मोहम्मद, कालिक्ट विश्वविद्यालय राजकाल एण्ड सन्स, खमीरी गेट, दिल्ली 1975 ई०
- ॥ 4॥ "अमीर खुसरो और उनका हिन्दी साहित्य" भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली 1985
- ॥ 5॥ अनूदित क़ुरान मजीद, मरक्की मकतबए इस्लामी, दिल्ली 6
- ॥ 6॥ "आदि तुर्क कालीन भारत" सैयद अहमद अब्बास रिज़वी, अनुवादक सैयद अहमद अब्बास रिज़वी, हिस्ट्री डिपार्टमेंट, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़, 1956 ई०
- ॥ 7॥ "इस्लाम के सूफी साधक" लेखक रोनाल्ड ए; निकलसन, अनुवादक श्री नर्म-देशधर चतुर्वेदी, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
- ॥ 8॥ "उत्तमान कृत पिनावली" डा० धिरण लाल शर्मा, निर्माण प्रकाशन दिल्ली 1984 ई०
- ॥ 9॥ "कुतुबन कृत गिरगावली" डा० परमेश्वरी लाल गुप्त विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1967 ई०
- ॥ 10॥ "कबीर ग्रंथावली" संपादक माता प्रसाद गुप्त, ग्रामाणिक प्रकाशन आगरा, 1969 ई०

- ॥ 11॥ "कबीर की विचारधारा" डा० गोविन्द त्रिगुणाचल, साहित्य  
निकेतन, सं० 2024
- ॥ 12॥ "कबीर" राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1973 ई०
- ॥ 13॥ "कुसरो की हिन्दी कविता" बृजराजनदास, नागरी प्रचारिणी सभा,  
सं० 2010
- ॥ 14॥ "पीदायन का सांस्कृतिक अध्ययन" डा० ज्ञानाणु परवीन, मंगला  
प्रकाशन 41939 रामकृष्णपुरम नई दिल्ली-110022, 1985 ई०
- ॥ 15॥ "जायसी ग्रन्थावली" पदमावत टीका सहित संपादक राजनाथ  
शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1966 ई०
- ॥ 16॥ जायसी ग्रन्थावली अर्थात् पदमावत, अखराट और आखिरी क्लाप,  
संपादक रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2028
- ॥ 17॥ "जायसी" राजनाथ शर्मा, प्रकाशन केन्द्र, न्यू विविलेज अमीना बाघ,  
लखनऊ ।
- ॥ 18॥ "तत्सव्युक् अध्या सुफीमत" श्री चन्द्रवली पाण्डे, सरस्वती मंदिर, जलन-  
बर वाराणसी, 1968 ई०
- ॥ 19॥ तैत्तिरीयोपनिषद्, डॉ० भार्गवार्थ, गीता प्रेस गोरखपुर
- ॥ 20॥ "पदमावत" मलिक मुहम्मद जायसी कृत महाकाव्य ॥ मूल और संक्षिप्त  
व्याख्या ॥ वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य सदन पिरगीच बी०सी० 2018 वि०
- ॥ 21॥ "कृष्णवीराज रासो" पदमावली समग्र डा० हरिहरनाथ टण्डन, विनोद  
पुस्तक मंदिर आगरा, 1974 ई०
- ॥ 22॥ "भक्तिकालीन हिन्दी-साहित्य में योग भावना" डा० शिवशंकर शर्मा  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित, 1970 ई०
- ॥ 23॥ "भारतीय इतिहास का प्रवाह" पी० सरन, डी० आर० मंडारी, रणजीत  
प्रिंटेर्स एण्ड पब्लिशर्स, पी० दनी चौक दिल्ली, 1961 ई०

- ॥24॥ "भागवत दर्शन" डा० हरचंद्र लाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर,  
अलीगढ़ सं० 2020 वि०
- ॥25॥ "मधुमालती का काव्य सौन्दर्य" डा० दर्शनलाल सेठी, हिन्दी साहित्य  
संसार, 1972 ई०
- ॥26॥ "मुण्डकोपनिषद्, श्रीकर भाष्यार्थ गीता प्रेस गोरखपुर
- ॥27॥ "विश्व इतिहास की रूपरेखा" लेखक डा० एस्० ए० ए० रिजवी, कैंबर  
एस; एस० चौहान, प्रकाशक भा० निहलचन्द एण्ड सन अलीगढ़ 1959 ई०
- ॥28॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् श्रीकर भाष्यार्थ, गीता प्रेस गोरखपुर
- ॥29॥ "श्री रामचरित मानस" [मूल मधुला साइज] गीता प्रेस गोरखपुर सं० 2040
- ॥30॥ "श्री भगवद् गीता" श्रीकर भाष्य हिन्दी अनुवाद सहित संवत् 2018
- ॥31॥ "सुफीमत साधना और साहित्य" रामपूजन तिवारी ज्ञानमण्डल लिमिटेड-  
टैक वाराणसी संवत् 2025
- ॥32॥ "संत साहित्य की भूमिका" श्री परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी प्रचार सभा  
हैदराबाद, संवत् 2017
- ॥33॥ "सुफी संत मिर्ज़ा मज़हर जान जाना" मुहम्मद उमर, भारत प्रकाशन  
मन्दिर, सुभाष रोड, अलीगढ़, संवत् 2017
- ॥34॥ "संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो" हजारवी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह,  
साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1957 ई०
- ॥35॥ "सुफी संतुर हस्तपत्र की बानी" [किताबुत तासीन] डा० श्याम मनोहर  
पाण्डेय, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद
- ॥36॥ "सन्तों का भक्तियोग" [उम्मी के प्रकाश में] डा० राजदेव सिंह,  
हिन्दी प्रचारक संस्थान, 1968 ई०
- ॥37॥ "सुफी महाकवि जायसी" डा० जयदेव कुल्लेष्ठ, भारत प्रकाशन मन्दिर  
अलीगढ़, 1966 ई०



- ॥38॥ सुफी दर्शन एवं साधना, डा० कौसर यज़दानी, जैनविन पब्लिकेशन,  
दिल्ली 1987
- ॥39॥ "हिन्दी और फ़ारसी सुफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन" डा० श्री-  
निवास बन्ना, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संवत् 2027
- ॥40॥ "हिन्दी साहित्य का इतिहास" रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी  
सभा वाराणसी, संवत् 2015 वि०
- ॥41॥ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास चतुर्थ भाग भक्तिकाल सं० 1499-  
1700, सम्पादक पं० परशुराम चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा  
संवत् 2025 वि०

#### पत्र-पत्रिकाएँ =====

##### पत्रिका

- अतएव - सं० राम पाल सिंह - उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ  
अंक 3,4,5
- अभिभव भारती - सं० डा० नज़ीर मोहम्मद, शोध पत्रिका, हिन्दी विभाग  
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़
- कादम्बिनी - सं० राजेन्द्र अवस्थी, हिन्दुस्तान टाइम्स, प्रकाशक दिल्ली  
सन् 1986
- धर्म युग - कार्यवाहक सं० गणेश मंत्री,  
7-13 अगस्त टाइम्स ऑफ इण्डिया, पब्लिकेशन  
14-20 अगस्त बम्बई  
सन् 1988

### उर्दू की सहायक पुस्तकें

- ॥ 1॥ "अखबार-उल-अखबार, फी इस्तरास्त अब्दुल उर्दू" शेख अब्दुल हक मोहम्मदिदस्त दहलवी, 1328 हिजरी
- ॥ 2॥ "असतक़ुषुक् अन मुहम्ममाते अल तसव्वुफ़" हकीम उल उम्मत हज़रत मोलाना अशरफ़ अली, मक़तबा तज़ल्लि, देवबन्द यू०पी० 1972 ई०
- ॥ 3॥ "अननबी-उल-खातिम" सैयद मनाज़िर अहसन ग़ीलानी, अज़ीम बक़ डिप्टी देवबन्द यू० पी०
- ॥ 4॥ अवारिफ़ुल मज़ारिफ़, शेख़ अब्दुद्दीन सोहरवर्दी, अरज़द ब्रादर्स क़वा पीलान दरियागंज दिल्ली-6, 1979 ई०
- ॥ 5॥ "आब-ए-कोसर" शेख़ मुहम्मद इकराम इदारा सफ़ाफ़ुल-ए-इस्लामिया कलब रोड लाहौर, 1979 ई०
- ॥ 6॥ "इस्लाम की अज़लाकी तालीमात" इमाम ग़ज़ाली ज़ाकिर हुसैन इन्स्टीट्यूट इस्लामिक इस्टेडीज़ ज़ामिया नगर, नई दिल्ली-25, 1973 ई०
- ॥ 7॥ "इस्लामी तसव्वुफ़" सैयद अहमद उस्मज़ क़ादरी मरक़्ज़ी मक़तबा इस्लामी, 1980 ई०
- ॥ 8॥ "क़ुरान और तसव्वुफ़" डा० मीरवली उद्दीन साहब, नद वतुल गुलामिनीन ज़ामा मस्जिद देहली-6, 1979 ई०
- ॥ 9॥ "क़फ़ुल-महबूब" हज़रत शेख़ मयूदूम हुजबेरी ज़ाता-गंज बख़्श लाहौर, मक़तबा-ए-धानवी, देवबन्द यू० पी०
- ॥ 10॥ ख़ज़ीनतुल असीफ़िया, शेख़ गुलाम सरवर ज़ीलानी, लाहौर
- ॥ 11॥ "ख़तमुन नबुव्वाह" आला हज़रत अहमद रज़ाख़ान बरेलवी, पहाड़ी इग़ली ज़ामा मस्जिद देहली, 1987 ई०
- ॥ 12॥ "ख़ुबता दूल-आसार" सैयदना शेख़ अब्दुल हक़ मुहम्मदिदस्त दहलवी, रज़ा अके-डमी रामपुर यू० पी० 1980 ई०

- § 13§ "तज़किया-ओ-अहसान" मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी मजलस-  
ए-तहकीकात-ओ-नसर्यात-ए-इस्लाम, पो० बा० 119, लखनऊ 1973 ई०
- § 14§ "तारीख-ए-दावत-ओ-अज़ीमत" मौलाना अबुल हसन उली नदवी मजलस-  
ए-तहकीकात-ओ-नसर्यात-ए-इस्लाम पो० बा० 119 लखनऊ 1979 ई०
- § 15§ "तारीख-ए-तसवुफ़" अल्लामा इक़बाल मक़तबा-ए-तामीर-ए-इन्सानियत,  
उर्दू बाज़ार लाहौर, 1985 ई०
- § 16§ "तारीख-ए-मज़ायख़िषत" भाग-1, प्रो० ख़लीक़ अहमद निज़ामी इदारा  
अदीब्यात, दिल्ली-6, 1980 ई०
- § 17§ "तारीख़ उफ़कार-ए-उलूम-ए-इस्लामी" अल्लामा राग़िब अलतबाय़ मरक़्की  
मक़तबा इस्लामी देहली-6, 1983 ई०
- § 18§ "तज़किरतुल औलिया" फ़रीदुद्दीन अन्तार, शेख़ गुलाम हुसैन एण्ड सन्स  
उर्दू बाज़ार लाहौर
- § 19§ "तोहफ़ा-ए-हदीस" मौलाना मुहम्मद अमीन इख़री अलदास्त सलीफ़ा  
मोमिनपुरा बम्बई-11, 1979 ई०
- § 20§ "नफ़्हातुल उन्स" हज़रत मौलाना अब्दुल रहमान ख़ामी, मदीना पीब्लीशिंग  
कम्पनी, जिना रोड कराँची, 1981 ई०
- § 21§ "फ़सायदुल फ़माद" हज़रत अमीर अली सन्जरी मन्ज़ूर बुक डिपो, 288,  
बुलबुली ख़ाना देहली-6, 1989 ई०
- § 22§ "फ़साना-ए-आदम" मौलवी हाफ़िज़ मुहम्मद इस्हाक़, गर्ग एण्ड कम्पनी  
थोक बुक सेलर्स ख़ारी वाबली दिल्ली
- § 23§ "सलातीन-ए-देहली के मज़हबी रुझानात" ख़लीक़ अहमद साहब निज़ामी,  
नद-वतुल मुसन्निफ़ीन ज़ामा मस्जिद, देहली 1958 ई०
- § 24§ "मआरिफ़-ए-शम्स" शेख़ हज़रत शम्स तख़रेज़ कुतब ख़ाना मज़हरी गुलज़न  
इक़बाल ब्लाक-2 कराँची 1976 ई०

- ॥ 25 ॥ "नये मुश्ताहदात और मौज्जाये अक़्बुल क़मर" मुईनुद्दीन रहबर फ़ास्की,  
नेशनल फ़ाइन प्रिंटिंग प्रेस चार, क़मान हैदराबाद भारत 1968 ई०
- ॥ 26 ॥ "मुन ताख़िब अल तवारीख़" मुल्ता अब्दुल क़ादिर ज़दायूनी, ज़ैतु मुल्ता  
अली स्पेड सन्स, पब्लिशरस, लाहौर 1962 ई०
- ॥ 27 ॥ "मारका-ए-ईमान व मादिदयत" मौलाना सैयद अबुल हसन अली नदवी,  
मजलस-तहकीकात-ओ-नसेयित-ए-इस्लाम पो० बाक्स 119 लखनऊ 1979 ई०
- ॥ 28 ॥ "सफ़ीनतुल औलिया" अहज़ादा दाराशिकोह, साबरी बुक डिपो देवबन्ध  
यू० पी०
- ॥ 29 ॥ "सहीबुल्लारी अरीफ़" उर्दू बुलबुली ख़ाना देहली-6
- ॥ 30 ॥ "हिक्मत-ए-रुमी" डा० ख़लीफ़ा अब्दुल हकीम, इदारा-ए-सक़ाफ़त-ए-  
इस्लामिया क्लब रोड लाहौर
- ॥ 31 ॥ "हयात-ए-जैतु-उल-इस्लाम" सैयद मोहम्मदग़िया, इस्लामी बुक देत-  
बन्द यू० पी०
- ॥ 32 ॥ "हादी-ए-आलमा" मोहम्मद पली राज़ी मरक़्ज़ी इदारा-ए-तबलीग़-  
ए-दीनवात, ज़ामा मस्जिद देहली, 1983 ई०

अंग्रेजी-ग्रन्थ  
\*\*\*\*\*

- ॥१॥ ए हिस्ट्री ऑफ इन्डिया भाग-१  
के० रेन्टोनोबा, जी बोन्गाई लेखन, जी कौटोपीसकी  
प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को । ॥१९७३॥
- ॥२॥ ए हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, भाग-२  
॥वही॥-----॥१९७३॥
- ॥३॥ रेडियन रिक्लीजन्स, जीफ्री पैरिन्डर,  
स्टीलिंग पब्लिशर्स, प्राईवेट लिमिटेड
- ॥४॥ ए हिस्ट्री ऑफ सुफ़िम इन इन्डिया, भाग-१  
सैयद अहमद अब्बास रिज़वी  
मुन्शीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड  
५४-रानी झोली रोड नई दिल्ली ॥१००५५॥ ॥१९८१॥
- ॥५॥ ॥बाबर॥ स्मार्त ऑफ इन्डिया,  
स्टैन्ली लेनी, पोली - - - -  
एस० चन्द एण्ड कम्पनी देहली, नई देहली ॥१९७१॥
- ॥६॥ इण्डीस्टोरीज़ फ़र्ग्युस इन्डियन हिस्ट्री,  
ई० मार्सेडेन, बी० ए०  
मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड,  
सेन्ट मारीदन्स स्ट्रीट, लन्डन ॥१९१७॥
- ॥७॥ इन्फ़्लूयेन्स ऑफ इस्लाम ऑन इन्डियन क्लचर,  
डा० तारा चन्द, द इन्डियन प्रेस प्राईवेट लिमिटेड इलाहाबाद ॥१९७६॥
- ॥८॥ इस्लाम एण्ड इन्डियन क्लचर  
डा० बी० एन० पांडे ॥१९८५॥
- ॥९॥ आज्ज लाइन्स ऑफ इस्लामिक क्लचर भाग-२  
ए० एम० डा० शुबतरी, बेंगलूर प्रेस, बेंगलूर सिटी ॥१९३८॥

- ॥ 10॥ 'कुरआनिक ऐथिक्स' बशीर अहमद डार,  
इन्स्टीट्यूट ऑफ इस्लामिक कलचर क्लब रोड लाहौर ॥ 1979॥
- ॥ 11॥ 'फुटेबल/फुटबल' द कुरान,  
हनीफ, ई० के० राजा, मिशन प्रेस, इलाहाबाद, ॥ 1947॥
- ॥ 12॥ स्टडीज इन इन्डियन हिस्ट्री एन्ड कलचर भाग-1  
यू० एन० राय, लोक भारतीय पब्लिकेशन्स  
15-ए० म्हात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-1
- ॥ 13॥ संस्कृत इन थर्ी लेक्चर्स,  
धमेन्द्र नाथ शास्त्री, भारतीय विद्या संस्थान, इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डो-  
लोजी, दरियागंज दिल्ली, ॥ 1975॥
- ॥ 14॥ स्टडीज इन इन्डोलोजी  
डा० डी० एन० शास्त्री तथा अन्य भारतीय विद्या संस्थान  
दरियागंज दिल्ली ॥ 1973॥
- ॥ 15॥ "यूनिफ़ॉर्म" एन एकाउन्ट ऑफ द गिस्टिक्स ऑफ इस्लाम,  
ए० जे० आरबेरी, जॉर्ज ऐलिन एन्ड अनविन लिमिटेड लन्डन ॥ 1956॥
- ॥ 16॥ "शेरु फ़रीदुद्दीन गंज शकर" खलीफ़ अहमद निज़ामी  
इदारा-ए० अदीब्यात दिल्ली ॥ 1973॥
- ॥ 17॥ तारीख़-ए० दूलाही बी० एस० बेन्डरे,  
सेन्टर ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी डिपार्टमेंट ऑफ़ हिस्ट्री  
अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़ ॥ 1972॥
- ॥ 18॥ द गोस्पेल ऑफ़ बर्बास, लौन्स डेल एन्ड लोरा रणन बेगम आइज़ा  
बबानी क्लफ़ पो० बक्स नं० 4178, कराची पाकिस्तान

